Pandit Dayanand left the station in August and in October. Mr. Sen was called down from the Simla Hills, whither he had come Mr Sen complied with their earnest request.

nd once more brought fresh enithusiasm to the cause.

The Arya Samaj was dudy organised at Lahore as a rival of the Brahma samaj, during the course of next two years with Lala Mulraj, who had earned his distinction as the fresh Punjabi Prem chand Roy chand Scholars its President. and the new struggle began. P. 400

Pandit Agnihotri, who strongly inclined in favour of the Sadharana Brahma Samaj···published a pamphlet cre tecising one of Swami Dayanandas books and also a book of theistic hymns, in the pages of the Birather Hindi, He entered into terrible and mortal conflict with the Arya Samaj.

He(Agnihotri) was ordained as a missionary of the Sadharana Brahma Samaj in 18।।

ब्राह्म-समाज का इतिहास-शिवनाथ शास्त्री एम० ए० रचित प्रकाशित १९१२।

सन १८७५ के प्रारम्भ में-एक नया प्रतिद्वन्द्वी और अभिनव संघर्ष थोड़े ही समय में सामने आ रहा था। आर्य समाज के प्रसिद्ध संस्थापक उस वर्ष लाहौर पधारे और अपने भाषणों और शास्त्रार्थों से शिक्षित पंजाबियों को उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकृष्ट करने में सफल हुए।

आर्य समाज के संस्थापक के सफल प्रचार ने ब्रह्म समाज की सभाओं में उपस्थिति कम कर दी। और ब्रह्म समाज के सदस्यों को इस बात की आवश्यकता का अनुभव हुआ कि यदि सम्भव हो तो एक बार पुनः सेन महोदय की सेवाओं को उपलब्ध करें। पंडित राज दयानन्द ने लाहौर से अगस्त और अक्टूबर में विदा ली। सेन महोदय को शिमला पर्वत श्रेणी से बुला लिया गया। सेन ने आग्रह पूर्वक की गई प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और एक बार फिर ब्रह्म समाज के लिए उत्साह

उत्पन्न कर दिया। उसी समय अगले दो वर्ष में ही लाहौर में आर्य समाज का संगठन ब्रह्म समाज के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में किया गया।

लाला मूल राज जिन्होंने योग्यता के कारण ख्याति अर्जित की थी जैसी कि पंजाबी विद्वान प्रेमचन्द रायचन्द ने की थी समाज के प्रधान बने और नया संघर्ष प्रारम्भ हुआ। -पृ० सं० ४००

पं०अग्निहोत्री जो साधारन ब्रह्मसमाज के पक्ष में दृढ़ निष्ठ हो गए थे उन्होंने एक ट्रैक्ट (पैम्फलेट) निकाला, जिसमें स्वामी दयानन्द की पुस्तकों तथा वेदमन्त्रों की समालोचना बादरे-हिन्द के पृष्ठों में की। वह आर्य समाज के साथ भयावह संघर्ष में संलग्न हुआ जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ।

अग्निहोत्री १८११ में साधरन ब्रह्म समाज के उपदेशक नियुक्त हुए थे।"

इस सब संघर्ष का अध्ययन कर देवेन्द्र बाबू ने ब्रह्म समाज को आड़े हाथों लिया उन्होंने लिखा—"उन्होंने (ऋषिवर ने) पं० कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन किन लोगों से एकत्र किया है?

पं जी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्रह्म समाजी बंगाली थे। महाराज (दयानन्द जी) यह ज्ञात करके कुछ क्षुब्ध हुए, और कहा आप लोगों को इन (ब्रह्मसमाजियों) पर भरोसा नहीं करना चाहिए, ये लोग आज आप के मित्र हैं कल शत्रु हो जायेंगे।"

-म. द. च. पृ० ५३८

"पृ०-४१० पर ब्रह्म समाजियों का अशिष्टाचार लिख मारा 'ब्रह्म-समाजियों ने महाराज से व्यय के २५ रुपये तक ले लिये।'

इतना तीखा प्रहार किया देवेन्द्र बाबू ने। फिर उन को कौन ब्रह्म-समाजी सहयोग देता। यह तो पं० दीन बन्धु जी का ४० वर्ष का अध्यव-साय एवं तीनों ब्रह्मसमाजों की वेदी पर व्याख्याओं से सम्पर्क तथा शान्ति निकेतन में वेद कथा करते रहने का प्रभाव है कि यह आत्म चरित्र उप-लब्ध हो गया।

सन ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में ऋषि ने पूरा भाग लिया

सत्यार्थ प्रकाश की साक्षी—

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में ऋषिवर लिखते हैं--

"जब संवत् १९१४ में तोपों के मारे मन्दिर की मूर्त्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्ति कहाँ गई थीं। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति मक्खी की एक टांग भी न तोड़ सकी।

जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके घुर्रे उड़ा देता, और यह भागते फिरते। भला यह तो कहो जिसका रक्षक मार खाये उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें।"

—सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास पृ० ४०६ बुकसाइज।

बाघेर जाति—"१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर" में वीर सावर करने सन् ५७ की इस घटना को स्पष्ट किया है। बाघेर जाति की वीरता—

"स्वातन्त्र्य समर के रुद्र तान्त्या टोपे ने कानपुर की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उनके पहुँचने से पहले ही लखनऊ हाथ से निकल गया।

केम्पवेल ने गंगा के किनारे ही तान्त्या टोपे को घेर लिया। बीर-क्रान्तिकारियों की तलवार ब्रिग्रेडियर विलसन को चाट गई, मेजर स्टीलंग न रहा। लेफटिनैन्ट गिबन्स भी धराशायी हो गया।.....इस प्रकार तान्त्या टोपे को तृतीय विजय प्राप्त हुई। रण देवता ने एक और सुमनान्जलि विजय माल के रूप में समर्पित कर दी।

अंग्रेजों की दुर्दशा—इस पराजय का अत्यन्त रोचक वर्णन एक अंग्रेज अधिकारी ने इन शब्दों में किया है—'आपको आज का विवरण पढ़ कर आश्चर्य होगा, क्योंकि आपको विदित होगा कि अपने सम्मान चिन्हों महान् उपाधियों और नितान्त प्रसिद्ध शौर्य से मण्डित गोरे सैनिकों

को पराजय मिली। वृणित एवं तुच्छ भारतीयों ने उनके तम्बू और सामग्री ही नहीं प्रतिष्टा का भी अपहरण कर लिया और अब हमारे शत्रुओं को हमें पराजित फिरंगी कहने का अधिकार प्राप्त हो गया था।हमारे सैनिक अपने उलट दिये गए तम्बुओं, फटे, जीर्ण, शीर्ण वस्त्रों तथा सामग्री और भागते हुए ऊंटों, हाथियों, अश्वों तथा नौकरों सहित भाग निकले। यह सम्पूर्ण घटना ही नितान्त लज्जाजनक और विषाद पूर्ण है।"

—चार्लस बालकृष्ण की-इन्डियन म्युटिनी, खण्ड २, पृ० १९०

यहाँ बाघेर शब्द नहीं है। पर यह बाघेर कानपुर के आस-पास रहने वाली ही वीर जाति है। इनका नाम किसी इतिहासकार के लेख में नहीं दिया गया। पर ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में इन्हें 'बाघेर' जाति के नाम से बड़े सम्मादर के साथ स्मरण करते हैं। इस शब्द प्रयोग से सिद्ध हो रहा है, ऋषि दयानन्द ने इस घटना को प्रत्यक्ष देखा था। इतना ही नहीं अभी पूरा वृत्त पढ़ लीजिये। इसमें कौन सम्मिलित थे। किस मन्दिर की मूर्त्तियाँ अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दी थीं।"

"अंग्रेज इतिहासकार भी इस बात से सहमत हैं, कि यदि तान्त्या टोपे के शौर्य और रण कौशल में उसकी सेना के अनुशासन का योग दान हो जाता तो सम्भवतः तान्त्या टोपे हम को मटियामेट कर देता परन्तु अभी भारत को कुछ और ही देखना था।

बिठूर के मन्दिर को तोपों से उड़ाना—उन्हीं दिनों तान्त्या के शिविर में नाना साहब पेशवा और वीर कुंवर सिंह भी आ मिले। १ और २ दिसम्बर को कैम्पवेल की सेनाओं से लोहा लिया। ६ दिसम्बर को पुनः। पर उन्होंने (अंग्रेजों) ने क्रान्तिकारियों की ३२ तोपों पर अधिकार जमा लिया। क्रान्तिकारी अयोध्या और कालपी की दिशा में पलायन कर गए। केम्पवेल ने अब ब्रह्मावर्त पहुँच कर वहाँ लूट मार की और नाना साहब के बिठूर स्थित महल के महल को खण्डहर सा बना दिया। उसने अपनी विजय के भवन पर कलश चढ़ाने के लिए वहां के सभी मन्दिरों को भी खण्डहर बना दिया।

ब्रह्मावर्त का वही महल उसने खण्डहर बना दिया, जिसमें भारत माता के महान् सपूतों नाना साहब, तान्त्या टोपे, बाला साहब और राव साहब खेले थे। जिसमें झाँसी की अलबेली लक्ष्मी बाई पली थी और बढ़ी थी।

यह वही राज महल था, जिसके प्रांगण में बैठ कर १८५७ के महान् स्वातन्त्र्य संग्राम को कल्पनायें संजोई गयीं थी। इस साधना को ब्रह्मावर्त के देवालयों ने ही तो आशीर्वाद दिया था। इसी राजमहल में स्वातन्त्र्य सुमन खिले थे। इसी राज महल का तो प्रक्षालण एक दिन अंग्रेजों के उष्ण रक्त से किया गया था।

—पृष्ठ ३६२,३६३।

शिवनारायण द्विवेदी ने 'गदर का इतिहास' लिखा है, पर अंग्रेज ऐतिहासिकों के स्वर में स्वर मिलाना पड़ा है। अंग्रेजी शासन था न ! प्रकाशित १९७८।

—"सिपाही गंगा पार होने का प्रबन्ध कर रहे थे। होप ग्रान्ट की सेना ने उन पर हमला किया। १५ तोपें छोड़ कर सिपाही भाग गए। यह लड़ाई ९ दिसम्बर को शिवराज पुर के गांव के सामने हुई थी " नाना साहब बिठूर आये थे। पार हारका समाचार सुनकर अपने नौकरों और तोपों सहित गंगा पार होकर अवध की ओर चले गए। प्रधान सेनापति की आज्ञा से ११ दिसम्बर को होप ग्रान्ट ने बिठूर जाकर नाना साहब का मन्दिर और महल तोपों से गिरा दिया था। नाना साहब के महल में जो कुंआ था उसमें से तीस लाख रुपया और चान्दी सोने के बरतन ब्रिटिश सैनिकों ने निकाले।" पृ० १२१६

यह थीं बिठूर की मूर्त्तियां और महल जिन्हें अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दिया था। आज भी बिठूर के खण्डहर रक्तिम होली और देश भक्ति की गवाही दे रहे हैं। कभी भारतीय राज्य हो पाया तो यहाँ स्वातन्त्र्य संग्राम का स्मृति चिन्ह वीर पुंगवों की स्मृति में भारत वीरों की गाथा गायेगा।

५७ की घटनायें ऋषि ने स्वयं देखी—प्रत्यक्ष द्रष्टा ऋषि का आत्मा इसी पर सत्यार्थ प्रकाश जैसे धर्मग्रन्थ में भी १८५७ के उनवीरों की स्मृति में यह पंक्तियाँ लिखने को विवश हुआ था। अपना भेद खुल जाने का भय भी भारत वीरों को श्रद्धान्जलि अर्पण करने के कारण छोड़ दिया था। धन्य है भारत माता के सपूत दयानन्द योगिराज और उनके भक्त क्रान्ति समर के होतृगण।

क्या आर्य जगत् ही कभी इन विठूर के खण्डहरों में स्वतन्त्रता संग्राम के दीप जला सकेगा और भारत को विदेशी भोग विलासिता की दासता से मुक्त रक सकेगा।

थियोसोफिस्ट में सन् ५७ का लेखा

अब तनिक इसप्रसंग के साथ थियासोफिस्ट के आत्मचरित्र का मेल मिलाइये, तनिक भी अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से आज तक विश्लेषण नहीं किया गया। इसीलिये सन ५७ का ऋषि का सहयोग अन्धकार में रहा। थियासोफिस्ट का अंग्रेजी लेख मिलता न था। महात्मा नारायण स्वामीजी के पुस्तकालय में यहाँ रामगढ़ में अचानक यह हाथ लगा। सारा रहस्य खुल गया। देखिये

थियासोफिस्ट में स्थान	तिथियां
कुम्भमेला हरिद्वार	बैसाख १९१२ = मई १८५५ ईस्वी।
Life of Swami Dayanand Sarasvati —By, Har Bilas Sharda ji	
शीतकाल बिताया कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ In a munntain Peak Shiva puri (Town of Shiva) where I spent the four mounths of the cold seaon अर्थात् शिवपुरी में बीता। पृ० १९	१९१२ माघ फाल्गुण फरवरी १८५७
शिवपुरी से केदार, केदार से गुप्तकांशी फाल्गुण के बिताये।	कुछ दिन
(I stayed there a few Days) पृ० १९	
वहाँ से त्रियुगीनारायण, गौरी कुण्ड होता हुआ, भीम गुफा, केदार आया।	कुछ दिन
(Went thence to Tiruyugee Narayan, Gowree Kund, Cave of Bhim Gupha, returning in a fewdays to Kedar my favourite place of residence पृ० १०	
I there finally rested. अन्त में विश्राम वहां किया।	
Havingwandered in vain for about 20 days. १० p. व्यर्थ घूमाने के बाद	बीस दिन
तुंगनाथ पर चढ़ा, ओखी मठ पहुंचा, गुप्तकाशी आया, पुनः ओखी मठ, बद्रीनारायण	चैत्र १९१३-१८५६ मार्च।

I lived with him a few Days	कुछ दिन
अलकनन्द-माना-से होकर सत्पथ तक की यात्रा	बैशाख १९१३ १९५६ अप्रैल
Set out on my Journey back to Rampur रामपुर after Crossing Hills, forests and having descended the chilka	
यात्रा आरम्भ की वापिस रामपुर के लिये, पहाड़ पार किये, जंगल, चिलका घाटी पार की।	बैशाख १९१३= सन (अप्रैल मई) १८५६
(Back) शब्द (वापिस लौटा) शब्द बता रहा है यह रामपुर श्री नगर के पास वाला है। काशीपुर वाला नहीं।	
वहाँ से काशी पुर-द्रोण सागर Where I passed the whole winter जहाँ सारा शीत बिताया	कार्तिक, मार्गशीर्ष पौष, माघ संम्बत् १९१३ नवम्बर दिसम्बर= १८५६

Thence again to Sambhal Muradabad वहाँ से फिर दोबारा सम्भल मुरादाबाद से After crossing Gurh, Mukteshvar I found my self again on the banks of Ganges. फिर दोबारा मैंने अपने आप को गंगा के किनारे पाया .. having lingered sometimes on the banks of the Ganga — जनवरी फरवरी १८५७ मार्च अप्रैल १८५७ फाल्गुन चैत्र=१८१४

I was just entering Cawnpur by the southeast of the cantonement the Samvat year of 1912❀ (1855 A. D. was completed. मैंने कानपुर में प्रवेश किया उस सड़क से जो छावनी के पूर्व से जाती थी सम्बत् १९१२❀) अर्थात् (१८५५ सन्) पूर्ण हुआ।

During the following five months, १८५७ के अप्रैल मई,

❀ यहाँ १९१२ अशुद्ध है। १९१३ होना चाहिये। १९१३ समाप्त हुआ मार्च १८५७ को।

❀ यही बात पं० घासीराम जी वाले देवेन्द्र बाबू के म० द० चरित्र में पृ० ४७ के फुटनोट में कही है। उस समय १९१२ समाप्त हो चुका था। १९१३ होना चाहिए पृ० ४७

I visited many a place between Cawnpore and Allahabad	जून, जुलाई अगस्त = चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ,
इन पांच महीनों में कानपुर और अलाहाबाद के बीच में बहुत स्थानों में घूमा ।	आषाढ़, श्रावण सं० १९१४
In the begining of Bhadrapada I arrived at Mirzapur	सितम्बर १८५७ सन् भाद्रपद १९१४ सं०
आरम्भ भाद्रपद में मिर्जा पुर पहुँचा ।	
I stopped for a month or so near the shrine of vindya chal Asoolgi	सन् १८५७ सितम्बर १९१४ भाद्र पद
एक मास के लगभग विन्ध्याचल असूल जी में ठहरा	
arriving at Benras in the early part of Ashwin, stoppedthere at shrine of durga Kho in Chandalgarh wher I passed ten days	आश्विन का मध्य = १९१४ अक्तूबर १८५७
यह भ्रान्ति स्वरचित जीवन चरित्र में १९११ में हरिद्वार के कुम्भ में चल पड़ा लिखने से हुई है। कुम्भ १९१२ में था ।	
चण्डाल गढ में दुर्गा खोह में १० दिन ठहरा 10 days	आश्विन समाप्त
बनारस आश्विन में पहुँचा १२ दिन ठहरा	कार्तिक मध्य नवम्बर

and renewed my travels, after what I sought for

और अपनी यात्रा पुनः आरम्भ की, उस लक्ष्य के लिए जिसकी मैं खोज में था, चावल खाना सर्वथा छोड़ दिया केवल दूध पर रहना आरम्भ किया। दिन रात योग अध्ययन में लगा ।

नरबदा के स्रोत की और यात्रा जारी की ।

इस थियासोफिस्ट उद्धरण और काल गणना से सर्वथा प्रामाणित है कि स्वामी दयानन्द जी १९५७ की क्रान्ति में कानपुर में हैं और पूरा भाग लिया है ।

आज तक की भूलें—इस काल गणना को जान पड़ता है किसी ने मनोयोग से नहीं किया । पं० लेखराम जी ने यह तो स्वीकार किया है। कि चैत सुदी १९१४ विक्रमी अर्थात् २६ मार्च १८५७ बहस्पति वार को वहां चण्डाल गढ से आगे चल दिया । चण्डाल गढ का काल असौज शु.दि.

१९१३ बुधवार लिखा है। पर असौज शीतकाल है जो ऋषि ने उनके ही लेखानुसार द्रोण सागर पर बिताया है। स्पष्ट काल गणना में भूल है।

१.श्री पं०लेखराम जी ने मोटेशीर्षक में लिखा है—'उत्तराखण्ड में पौने दो वर्ष तक विद्वानों तथा योगियों को खोजा' म.द.जी.च.पृ. ३१। इस हिसाब से भी १९१२ सं० के वैशाख कुम्भ तदनुसार ११ अप्रैल १८५५ से पौने दो वर्ष ११ जनवरी १८५७ अर्थात् वैक्रम संवत् चैत्र १९१४ तक योगियों की खौज बनती है। इस चैत्र १९१४ के पीछे द्रोण सागर पर जाना चाहिये। द्रोण सागर हिमालय में नहीं, मैदान में ही मुरादाबाद के समीप है। थियासोफिस्ट में शीत काल द्रोण सागर पर बिताया है। कहीं भूल न है।

२. १९१४ अर्थात् १८५७ में यदि पण्डित जी के लेखानुसार अमर कण्टक की दूसरी यात्रा है। तो इस काल से पहले अमर कण्टक की पहली यात्रा होनी चाहिए। जिस का उल्लेख इस आत्मचरित्र में ही है।

३. भूल से फिर लिखा गया है—"छावनी के पूर्व जाने वाली सड़क से कानपुर को जाने वाला था। तो संवत् १९१२ विक्रमी तदनुसार ५अप्रैल १८५६ समाप्त हुआ' पृ. ३७।

विचारिये--११ अप्रैल १८५५ से ५ अप्रैल १८५६ तक उत्तरा खण्ड में पौने दो वर्ष रहने के पश्चात् कानपुर द्रोण सागर से गढमुक्तेश्वर तक ५।६ महीने ठहरने के पीछे भी कानपुर में ५ अप्रैल १८५६ में कैसे पहुँच गये। स्पष्ट भूल काल गणना न करने की है।

३. कलगणना की ही नहीं गई। आगे दो पंक्तियों में—एक साथ छपियों तक में भी विरोध है—'भाद्रपद तदनुसार अगस्त मास सन् १८५६ के आरम्भ में रविवार कोमैं···बनारस जा पहुँचा पृ. ३०

असौज (१५ सितम्बर १८५६ सोमवार) के आरम्भ में बनारस पहुँचा।" स्पष्ट है पं० जी को नोटों से पण्डित जी का हार्द नहीं समझा गया। पण्डित जी के लेख में ऐसा विरोध हो नहीं सकता। संग्रह कर्ताओं की भूल है।

महामना स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भी भूमिका में इस बात को खोल कर स्पष्ट किया है—'बहुत से वृत्तान्त पण्डित जी के हृदय में ही समाप्त हो गए।" —पृ. ४१

४. इसी प्रकार मनः प्रसूत कल्पना अलकनन्दा पार करते हुए याद्रोण सागर पर ऋषि की देहत्यागने की भावना का उल्लेख कर दिया गया है। थियासोफिस्ट में तो देह त्याग की कोई भी बात नहीं। पढ़िये I refused their offer for I could not walk Not with standing their pressing invitation offers. I remained firm and would not take Courage and follow them as they wanted me but after telling them that I would rather die, refused even to listen them, the Idea had struck me that I how better return and prosecute my studies"—मैंने उनकी घर ले जाने की सहानुभूति को लेने से इनकार कर दिया क्योंकि मैं चल नहीं सकता था। मैं उनके आग्रह पूर्ण निमिन्त्रण को मान न सका मैं दृढ रहा। उनके पीछे जाने की हिम्मत न कर सका जैसी उनकी इच्छा थी। उनको बता दिया मैं चाहे मर जाऊँ उनकी सुनने से भी मना कर दिया। यह विचार आया, कि अच्छा हो में लौट जाऊँ और अध्ययन जारी रखू।

यहाँ देह त्याग की कोई बात नहीं। चाहे मर जाऊँ और बात है। हाँ उपदेश मञ्जरी में दशम व्यख्यान में देहत्याग की बात है। पर वह अलकापुरी की है—'जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी है उस पर मैं इस विचार से गया था कि एक बार हो अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से मुक्त हो जाऊँ। परन्तु वहाँ पहुँच कर विचार में आया कि इस जगह पर मरना तो कोई पुरुषार्थ नहीं अलबत्ता ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना पुरुषार्थ है इस विश्वास के बदलने पर लौट आया था।"

—पूना प्रवचन पृ. ११६

इस घटना को द्रोण सागर पर लिखना भूल ही कही जा सकती है। १६वें व्याख्यान में लिखा है-'हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देह त्यागना चाहिये ऐसी ईच्छा हुई' द्रोण सागर तो हिमालय में है ही नहीं। अलकनन्दा हिमालय में है, पर अलकनन्दा को पार करते हुए यदि देह त्याग की इच्छा हुई होती तो भी हिमालय पर्वत नहीं लिखा जा सकता। हिमालय पर्वत पर तो अलका पुरी है।

५७ में क्रान्तिकारी दयानन्द का वयः—१८५७ मे ऋषि दयानन्द की आयु ३३ वर्ष की थी। क्यों कि सन १८२४ में ऋषि का जन्म हुआ था। उस समय वे रुद्र ब्रह्मचारी थे। जिसके विषय में सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने लिखा है—"**एतेहींद सर्व रोदयन्ति**'—उस रुद्र ब्रह्मचारी के प्राण

इन्द्रियां, अन्तः करण और आत्मा बलयुक्त होकर सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों के पालन करने हारे होते हैं।"—स० प्र० ३ समुल्लास।

देश स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ा हो। साधु सन्न्यासी सब ही भाग ले रहे हों। दयानन्द कानपुर में हों और वे असंग रहें। असम्भव है सन् ५७ की घटनाओं को तिथिवार मिलान कीजिये। फिर विचारिये—उस भयंकर स्वतन्त्रता संग्राम का आग भड़कने पर, दयानन्द जैसा भारत को जगाने वाला अग्रगण्य नेता, आर्याभिविनय जैसे भक्ति पूर्ण ग्रन्थ में भी अखण्ड साम्राज्य की प्रार्थना करने वाला, सत्यार्थ प्रकाश में विदेशी राज्य का घोर विरोध करने वाला, लाट पादरी और गवर्नर से भी निर्भय हो भारत की आजादी की बात कहने वाला, क्रान्ति से अलग थलग रह सकता था!

स्वातन्त्र्य संग्राम की चिनगारियाँ—Beging of mutiny on january 23, 1857 thc troops of Dum Dum near Calcutta openly displayed Their cartridoes.

On Marah 29 at Barrack Pore the adujtant of the 34th N. I. was cut on the parade ground, by Brahaman Sepoy.

During March and April twenty five fires occured at distant Ambala at Merrut on May 3 th 7th Oudh Infantry mutined at Lucknow.

—The Oxford History of India, by Vlncent A Smith.

५७ सन के विद्रोह का श्री गणेश। २३ जनवरी १८५७ को कलकत्ता के समीप दमदम की सेनाओं ने खुलकर कारतूसों के विरुद्ध विरोध किया।

बैरक पुर में २९ मार्च को ३४ नं. एन. आई० के सैनिक आफीसर सार्जन्ट (ह्यूमन को ब्राह्मण सिपाही (अर्थात् मंगल पाण्डे जिस का नाम घृणा दिखाने को नहीं लिखा गया) पैरेड ग्राउण्ड के खुले मैदान में गोली से उड़ा दिया गया।

मार्च और एप्रिल में नं०२५ के रिसाले ने दूर अम्बाले में गोली दाग दी।

३ मई को मेरठ में, ७ नं. अवध इनफैण्टरी ने लखनऊ में विद्रोह कर दिया।

—विनसेंट स्मिथ की हिस्टरी आफ आक्स फोर्ड

जनवरी, फर्वरी, मार्च, अप्रैल मई में ऋषि भी सम्भल, गढ गंगा के किनारे, मेरठ, अन्त में कानपुर में थे। क्रान्ति समर से अछूते रहे हों यह असम्भव है। समाचार न मिलते हों यह नितान्त असम्भव है।

गुजरात के पंचांग से गणना की जाये तो तिथियां दो मास आगे बढ़ जायेंगी। क्योंकि गुजरात में दिवाली पर कार्तिक-अक्टूबर में ही विक्रम सम्वत समाप्त हो जाता है —(देखो-किशना डायरी, श्री कृष्ण प्रिन्टिग प्रेस, खारगेट, भावनगर)। इस गणना से मई १८५७ में कानपुर में बीती माननी होगी जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, ५ मासों में कानपुर के परिसर में रहे। इससे निश्चित रूप से स्वामी जी ने क्रान्ति में पूरा भाग लिया है। 'थ्योसोफिस्ट तीथि और स्थान (देखो पृ० १०६) की गणना से भी सुस्पष्ट है कि क्रान्ति काल के ५ मास में ऋषि कानपुर और इलाहाबाद के मध्य रहते हुए क्रान्ति स्थानों में आते जाते रहे। क्रान्ति का इतिहास पढ़िये—

"६ जून को भयानक तूफान उठा। एक ओर इलाहाबाद और दूसरी ओर कानपुर। दोनों ओर का प्रतिघात फतहपुर पहुँचा। फतहपुर के उत्तेजित हिन्दू मुसलमान सिपाहियों से जा मिले। मुसलमान ईसाइयों के प्रचार से बहुत अधिक नाराज थे। इसलिए उनके विध्वंस के लिए चारों ओर से एकत्र होने लगे। सिपाहियों ने जेलखाना तोड़ दिया। कैदी चारों ओर लूटने खसूटने लगे। खजाना लूटा गया। कचहरी जला दी गई।

पांच सप्ताह तक फतहपुर विपक्षियों के हाथो में रहा। लोगों ने नाना साहब को अपना स्वामी स्वीकार किया। ......मजिस्ट्रेट सेहरा ने ने लिखा है हमारे रास्ते के अधिकांश गांव जला दिये। कहीं एक आदमी दिखाई नहीं देता। घरों की जगह राख के ढेर दिखाई देते थे। दिन में मेंढकों और झिल्लियों की आवाजें सुनाई देती थीं। मुर्दों के जलने की बू आती थी।

— पृ. सं. ६६६ गदर का इतिहास

फतहपुर संग्राम का समाचार कानपुर पहुंचा। २२ मील पर अवंग नामक गांव में बाला जी ने भयंकर चोट पहुँचाई, घमासान युद्ध तोपों बदूकों से हुआ।

घायल होकर बालाराव कानपुर पहुँचे। अजीमुल्लाखाँ बीबी घर

नाना साहब के बिठूर के महलों के विध्वस और बाघेरों की वीरता के साक्षात्-कर्ता सन् ५७ की क्रान्ति के सूत्रधार दयानन्द

(पृष्ठ ११४)

के अभागे कैदियों की ओर से उदास न था ..... १५ जुलाई को बीबी घर का २१० स्त्री व बच्चों का कत्ले आम हुआ। १६ जुलाई को कटे शरीर पास के कुएं में डाले गये।"

१६ जुलाई को पैदल, सवार और गोलन्दाज, पाँच हजार सेना के साथ नाना साहब अंग्रेजों का मार्ग रोकने चल पड़े।

इत्यादि भारतीय वीरों की वीरगाथाओं से स्वातन्त्र्यय संग्राम भरा पड़ा है। यह सब ऋषि के सामने हो और रुद्र ब्रह्मचारी शान्त हो देखता रहे, कैसे हो सकता है।

ऋषि से स्वातन्त्र्य संग्राम के सूत्रधार नाना परिवार का मिलन :

यही सब नाना परिवार के सदस्य थे—नाना की मुंह बोली बहन महारानी लक्ष्मीबाई, नानाजो की माता गंगाबाई, भाई बाला साहब, लेखक फिर मन्त्री अजीमुल्लाखां, तात्याँ टोपे, वीर कुंवर सिंह महाराज श्री के १९१२ से अर्थात् सन् १८५५ कुम्भ मेले पर चण्डी के पहाड़ पर दर्शन कर चुके थे। और संग्राम का आशीर्वाद लेकर आए थे। मंगल पांडे ने भी जो स्वातन्त्र्य संग्राम का श्री गणेश करने वाला था, महाराज श्री के दर्शन और आशीर्वाद लाभ किया था। कानपुर में स्वयं महाराज श्री अपने आशीर्वाद और स्वातन्त्र्य संग्राम के स्वप्रज्वालित विस्फोट को विस्फोट के केन्द्र में पहुँचकर देख रहे थे।

स्वातन्त्र्य संग्राम पर जहाँ ऋषि रहे, सैंकडों पृष्ठ भरे हैं। सबका देना अनपेक्षित होगा। स्वातन्त्र्य संग्राम की आवश्यक तिथियां देते हैं जो महाराज स्वतन्त्रता संग्राम की स्थल भूमि में विचरते आयीं। हो सकता है ऋषिवर ने बहुत कुछ उसमें साक्षात् किया हो।

१० मई को गढ़ जहाँ महाराज ठहरे थे—उसके पास मेरठ में १० मई को अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम की घोषणा हुई।

गदर का इतिहास पृ. १००५

१९ मई को मुरादाबाद के अधिकारियों को समाचार मिला विद्रोही लूट का माल ला रहे हैं। ग. इ. पृ. ६७७

रामपुर मुरादाबाद से १८ मील पर है। नवाब रामपुर की सेना ने अंग्रेजों को सहायता करने से नकार कर दिया। —वहीं

३ जून को बरेली शाहजहाँपुर में उपद्रव हुआ। पृ. १००५

८ जून को नाना साहब का कानपुर में अधिकार, स्वागत, तोपों की सलामी से। पृ. ६५५

३० जून को फरूखाबाद में विस्फोट पृ. १००६

१ जुलाई को धुन्धुपन्थ नाना साहब बिठूर में पेशवा के सम्मानित पद पर आरूढ़ हुए। बिठूर कानपुर से कुल ६ मील है।

१६ जुलाई को बीबी घर का संहार पृ. ६८०

११ दिसम्बर को बिठूर के महलों, मन्दिरों पर अंग्रेजों की तोप गरजीं। १२१६ पृ.

१ जून को—'सांयकाल नाना साहब अपने भाई बाला साहब के तथा मन्त्री अजीमुल्लाखाँ सहित पुण्य तोया गंगा के पावन तट पर जा पहुँचे, अन्य क्रांतिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पवित्र गंगाजल अपनी अंजलियों में लिया। और देश की स्वतन्त्रता हेतु धर्म युद्ध में कूद पड़ने का संकल्प ग्रहण किया'।

५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास पृ. १९८

नाना साहब की समाधि मोरवी में—बनी यह घोषित कर रही है कि नाना साहब ऋषि-शिष्य थे। इसीलिए उन्होंने मोरवी में प्रछन्न रूप में वास किया। मधु नदी के किनारे रेलवे लाइन के पास शंकर आश्रम में समाधि बनी है। मोरवी में समाधि बनवाना और वहीं साधुवेश में जीवन यापन इस बात का प्रबल प्रमाण है कि नाना साहब ने ऋषि दयानन्द योगिराज से ही सन्न्यास लिया था। वे उनके शिष्य थे। इसी लिये नाना साहब ने गुरु जन्म भूमि मोरवी में ही अन्तिम समय भक्ति-भाव से यापन किया। और वहीं देह त्यागी। मरते समय वहीं समाधि बनाने को कह गए।

श्री इन्दुलाल जी पटेल 'मोरवी वासी' ने इस समाधि के इतिहास की इन शब्दों में पुष्टि की है—मोरवी आर्य समाज के प्रमुख श्री पाना चन्द देव चन्द अब अति वृद्ध हैं। वे जब छोटे थे, नदी मधु पर स्नान करने जाते थे। आते जाते हुए शीतला मन्दिर के पास ठहरे हुए नये सन्न्यासी के दर्शन करते थे। वे प्रसादी शक्कर की देते थे। कुछ काल बाद सन्न्यासी को घर ले आए। ठहराया। सन्न्यासी ने गृहिणी का असाध्य रोग मिटाया। सन्न्यासी ने काच के ऊपर कुछ चित्र बना रखे थे।

वे १८५७ के वीरों के थे। सन्न्यासी के लिये किया खर्च चोपड़े (बही खाते) में मिलता है।

मरण समय सन्न्यासी बोले—'मैं नाना साहब पेशवा हूं। यह मेरी लकड़ी है। आधी सोने, मोहरों से भरी है। ठाकुर बाबा को देना और अग्नि संस्कार करने को कहना। इत्यादि।

उनकी समाधि शिव मन्दिर के रूप में है। काच का फोटो नगर रोड के घर में मौजूद है। दो तीन टूट गए हैं। वर्तमान रोड का नाम चन्द्र कान्त है। उन (पानाचन्द०) के दादा के समय की बात है। गुजराती साप्ताहिक पत्र 'साधना' रैड क्रास रोड, अहमदाबाद में लेख माला आयी थी। नाना साहब के विषय में थी। नवीन बातें थीं। चित्र अम्बालाल बापा के साथ देखे थे। वाटर कलर हैं।

ह. —'इन्दूलाल' (श्री वासुदेव वर्मा, पटेल नगर के सौजन्य से)

भोपाल में छतरी बनी इसका प्रतिवाद हो चुका है। वीर सावरकर जी ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है— "नेपाल से नाना साहब ने एक पत्र अंग्रेजों को लिखा था— 'What right have you to occupy India and declare me out-law.'— तुम्हारा क्या अधिकार है कि भारत पर अधिकार का मुझे अपराधी घोषित करने का"—इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ। इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। —स्वातन्त्र्य संग्राम

श्री शिवशंकर जी मिश्र ने 'नवजीवन' ३१ जुलाई में लिखा— 'गुजराती आचार्य जी ने कहना आरम्भ रखा— "मेरे पिताजी पंडिताई करते थे। तथा कथा, पूजा, श्राद्ध, तेरहीं एकादशी में बुलाये जाते थे। एक दिन पिताजी ने मुझसे कहा—आज शिवालय वाले बाबा के मरण-भोज में चलना है। इस वाक्य के साथ पिताजी का गला भर सा आया। लगा उन्हें बाबा की मृत्यु का दुःख था। बोले— 'याद तो है तुम्हें बाबा की! अभी पिछले रविवार को ही तो नदी पर स्नान कर रहे थे।

बाबा के मरने का समाचार सुनकर मैं तो रोने लगा। प्रायः ही दर्शन हो जाते थे। बाबा को नदी पर या पास के विद्यालय में देखता तो दौड़कर उनके पैर छू लेता और वह अपनी झोली से निकालकर कुछ न कुछ प्रसाद मुझे दे देते। पिताजी भी बड़े आदर से झुककर उन्हें प्रणाम करते। कहते—बेटा ये बाबा राजा हैं राजा। अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए उनके विरुद्ध लड़े और इसी लड़ाई में उन्हें अपने राजपाट

से हाथ धोना पड़ा। तुम्हें तो मालूम ही है कि नगर सेठ की हवेली में रहते हैं यह बाबा। हां तो मैं उस दिन पिताजी के साथ बाबा के मरण भोज में शामिल हुआ था। सचमुच ऐसा लग रहा था कि किसी राजा का ही मरण भोज है। मौरवी का प्रत्येक व्यक्ति जानता था इस बात को कि यह बाबा और कोई नहीं १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के नाना साहब पेशवा थे।

नाना साहब नगर सेठ की हवेली में रहते थे। यह हवेली क्या थी मानो भूल भुलैयां हो। वर्षों तक कोई इसमें रहे और दूसरा कोई जान भी न पाये। हवेली के मालिक उदार, धनी और नाना साहब के अनन्य भक्त थे। वह नाना साहब के आदेश पर दूसरों को रुपया भी दिया करते थे। मौरवी के पास नवलखो नामक एक बन्दरगाह है। मुझे तो सही बातें जानकर ऐसा लगा मानो नवलखी के जरिये नाना साहब विदेशों से संपर्क स्थापित करने की चेष्टा करते रहे। उन्हें इसमें कहां तक सफलता मिली इसके विषय में तो कुछ जान नहीं पाया मैं, पर पिताजी ने एक बार इतना अवश्य बताया था कि नाना साहब के अजीमुल्ला नामके एक साथी ने जूनागढ़ के नवाब के साथ निजाम मुहम्मद नाम रख कर विदेश जाने का प्रयास किया था, किंतु बाद में पकड़ लिया गया था। नाना साहब ने निजाम मोहम्मद को कुछ रुपया भी दिलवाया था।

नाना साहब मौरवी में थे। उनके नेपाल जाने की बात कैसे उठी और सजग सतर्क अंग्रेजी सरकार ने मोरवी में नाना साहब को गिरफ्तार क्यों नहीं किया ?

"नेपाल जाने वाली बात नाना साहब के सगे साथियों ने ही प्रचारित और प्रसारित की थी, जिससे अंग्रेजी सरकार उन्हें नेपाल के आस पास ही खोजा करे और उसका ध्यान किसी दूसरी ओर न जाए। रही नाना साहब को गिरफ्तार करने की बात मौरवी एक छोटा सा गाँव है। नगर सेठ वहाँ के राजा के समान था। उसके मेहमान सन्यासी के विषय में कौन अंग्रेजी सरकार तक सूचना पहुंचाता। १८५७की क्रान्ति के बाद देश वासियों के हृदय मे अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा भर गई थी कि वह अंग्रेजों के शत्रु के प्रति सहज सम्मान भावना रखते थे। नाना साहब या उस सन्यासी के विरुद्ध कुछ कहने का ग्रामवासियों के पास कुछ कारण नहीं था।

आचार्य जी शान्त हो गए मानो अतीत के सपनों में खो गए हैं और बन्द नयनों में उन्हें नाना साहब का सन्न्यासी रूप और मोटा सा डंडा दिखलाई दे रहा है।" ऐसा मालूम होता है कि नगर सेठ की हवेली में ठहरने वाली बात मौरवी में पहुंचने के आरम्भिक दिनों की है। और पढ़िये—

'Nana Sahib Peshwa and his chief adviserAzimullahkhan are the two whose ultimate fate remains unknown to this day. It is known that after the failure of the mutiny the Peshwa fled to Nepal. There he was granted assylum by the government of Nepal, but later the British Government exerted pressure for his extradition.According to this he was killed by a tigar while leaving Nepal and crossing over to India through the Terai jungles. The British have accepted this eversion of his death and it has been incorporated in official records.

But even British Historians are not quite certain whether Nana Sahib Peshwa did in fact die this way, Malleson a renowned British authority on the Mutiny, remarks that, unfortunately nothing defenite is known as to what happened to Nana Sahib.

In the diary of Lord Montague brings out the fact that he had at one time refused an informer's offer to provide clues leading to the capture of Nana Sashib if he was given a lakh of Rupees.

According to this version, Nana Sashib was forced to quit the heaven of Nepal. He crossed the Terai Hills, spread a rumour that he had been killed by a tiger, and by a devious route reached the city of Morvi with his two associates Yadim shah and Baldev Ram Bhave. He lived in Morvi.....Died recently as 1951.....Peshwa lived under an assumed Name Dayanand Yogindra.

—The Times of India, Sundy, May 25, 1969.

—संक्षिप्त सार—नाना साहब पेशवा और अजीमुल्ला खां का अन्त तिरोहित है। पेशवा नेपाल भागे। आश्रय नहीं मिला। लौटते हुए तराई जंगल में व्याघ्र ने मार दिया। यही अंग्रेजी सरकार के रेकार्ड में है।

परन्तु अंग्रेज ऐतिहासिक इस पर विश्वास नहीं करते। लार्ड मिन्ट गुमरी की डायरी में लिखा है कि उसे किसी ने सूचना दी कि यदि एक लाख रूपया दिया जाये तो वह नाना साहब का पता बता सकता है। लार्ड मिन्टगुमरी ने स्वीकार नहीं किया। इसके अनुसार व्याघ्र से मारे जाने की अफवाह स्वयं नाना साहब ने सरकार से छुपने के लिये फैलवाई। यादिम साहब और बलदेव राम भावे के साथ मोरवी पहुंच गये। १९५१ में देहान्त हुआ। अपना नाम दयनान्द योगीन्द्र बताते थे।

आगे अंग्रेजी पत्र ने अजीमुल्ला खाँ की मिली डायरी के आधार और गवाही के आधार पर मध्य प्रदेश के प्रताप गढ़ में मरने की बात कही है।❀

हमें प्रताप गढ़ में मरने पर कम भरोसा है। जो नाना के योगी दयानन्द के सम्बन्ध को उनका कल्पित नाम 'दयानन्द योगीन्द्र' भी बता रहा है।

कुम्भ मेले पर ऋषि के दर्शन करने वाले वीर पुंगव—

नाना साहब—इसी दासता की शृंखला को ८ लाख रुपये में खरीदने वाला कुल अंगार बाजी राव द्वितीय पूना के राजसिंहासन से च्युत होकर भागीरथी के तट पर जाकर ब्रह्मावर्त में अपना अवशिष्ट जीवन व्यतीत कर रहा था। अपनी पेन्शन के धन से अपने और अन्य अनेक परिवारों का उदारता सहित पालन कररहा था। इनमें ही माधवराव का परिवार भी था माधव राव अपने ही सगोत्र हैं यह जान वह नितान्त चकित हुए उन्होंने ७ जून १८२७ ईस्वी को नाना को विधिवत् दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया। उस समय नाना की आयु केवल २॥ वर्ष थी।

नाना का जन्म स्थान माथेरान के गगन चुम्बी शिखरों के अंक में स्थित वेणुनाम छोटे ग्राम में हुआ था प्रमुख माधब राव नारायण एवं उन की सुशीलाभार्या गंगाबाई नितान्त सादगी पूर्ण जीवन व्यतीतकर रहे थे। १८२४ ई० में नाना ने जन्म लिया गंगाबाई के पावन गर्भ से।

❀ श्री पं० क्षितीश कुमार जी वेदालंकार के सौजन्य से दोनों समाचार पत्र प्राप्त हुए।

अब नाना साहब २।। वर्ष की आयु में पेशवा और पेशवा के राज-सिंहासन के उत्तराधिकारी हो गए। अंग्रेजों ने आठ लाख रुपया पेंशन देकर राज्य अपने हस्तगत कर लिया।

बाजीराव ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही अपना मृत्यु पत्र (वसीयतनामा) लिख दिया। नाना साहब को उतराधिकारी घोषित कर दिया। सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हें समर्पित कर दिया। बाजी राव का निधन होते ही अंग्रेज ने घोषणा कर दी कि आठ लाख की पैन्शन पर नाना साहब का कोई अधिकार नहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध नाना साहब ने क्लेम किया। १८५४ में अजीमुल्ला खाँ को राजदूत बना कर लण्डन भेजा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी कुछ दिनों तक इधर-उधर के उत्तर देती रही। किन्तु एक दिन स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि 'दत्तक पुत्र नाना साहब को अपने पिता की पेंन्शन प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं।' अजीमुल्ला खाँ लौट आये।

ब्रह्मावर्त में स्थित थी बिठूर नगरी। प्राचीरों से टकराती भागीरथी प्रवाहित हो रही थी। सब ही राजसी वैभव और साज सामान थे। यहां ही नाना साहब रह रहे थे। नाना साहब ही धुन्धु पन्थ नाम से प्रसिद्ध थे—(४६२ पृ० ह. ले.) नाना ही स्वातन्त्र्य संग्राम के चालक थे। अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया। सारे देश के हिन्दू-मुसलमानों और साधु-सन्तों को संगठित किया। उनके चरणों में पहुंच कर वीरों ने आशीर्वाद एवं प्रचार में योग दिया।

महारानी लक्ष्मी बाई—उन्हीं दिनों में पावन क्षेत्र काशी में मोरो पन्त तांबे एवं उनकी सुशील पत्नी भागीरथी बाई भी निवास कर रहे थे।

१९नवम्बर १८३५ ई० को इसी दम्पती के घर कन्या ने आँखें खोलीं इसका नाम मनुबाई रखा गया बालिका तीन-चार वर्ष की हो पाई थी जब काशी क्षेत्र का परित्याग कर बाजीराव के उदार आश्रय को ग्रहण करने के हेतु ब्रह्मावर्त जाना पड़ा। मनुबाई ही लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहाँ बिठूर में लक्ष्मीबाई और नाना साहब की भेंट हुई। राजपुत्र नाना और लक्ष्मीबाई तलवारों से खेलते थे। जब नाना साहब विद्या अभ्यास करते लक्ष्मीबाई ध्यान पूर्वक देखती और इस प्रकार थोड़ा बहुत लिखने का अभ्यास हो गया। नाना साहब १८ वर्ष के और लक्ष्मी केवल ७ वर्ष की थी। प्रत्येक भ्रातृद्वितीया को दोनों बन्धु भगिनी पर्व का परि-पालन अत्यन्त आत्मीयता से करते थे।

१८४२ ई० में छबीली का विवाह झाँसी के महराजा गंगाधर बाबा साहब के साथ हो गया। लक्ष्मी बाई अब झाँसी की महारानी बन गई। पति की ख्याति के साथ महारानी लक्ष्मीबाई की ख्याति बढ़ने लगी, लोकप्रियता भी।

१८५३ ई० में पतिदेव के परलोकगामी हो जाने पर महारानी ने दामोदर राव को दत्तकपुत्र के रूप में गोद लिया। अंग्रेजों ने महारानी के गोद लेने के अधिकार को ठोकर मार दी और झाँसी को जब्त कर लिया। नाना की बहनछबीली अपने हाथों में राजदण्ड संभालकर दस्युओं को पराजित करने के लिए सन्नद्ध हो गई।

मैं अपनी झाँसी किसी को नहीं सौंपूंगी।

—'डलहौजी एडमिनिस्ट्रेशन' द्वितीय खण्ड।

अजीमुल्ला खाँ--अजीमुल्ला खाँ का जन्म भी एक नितान्त सामान्य परिवार में हुआ था। उन्नति करते-करते वे नाना साहब के विश्वास पात्र मन्त्रियों में से एक हो गये। पहले अंग्रेज परिवार में नौकरी करते हुए उन्होंने इंगलिश एवं फ्रेंच भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ख्याति फैलने पर नाना साहब ने उनको बिठूर दरबार में ले लिया था। नानासाहब को जंच गये। नाना ने बड़ी प्रशंसा की। १८५४में नाना साहब ने उन्हें राजदूत के रूप में इंगलैंड भेजा। अनेक आँगल युवतियों के प्रेम-पत्र उनके प्राणधनअजीमुल्ला के पासआते थे। कोहैवलोक'को'भी इस तथ्य की साक्षी बहुत विलम्ब से मिली। विद्रोह की सब योजनाओं में अजीमुल्लाखाँ का गौरव पूर्ण हाथ रहता था। नाना साहब इनके परामर्श का बहुत आदर करते थे। ऋषि ने स्नेह को देख अजीमुल्लाखां को नाना का बन्धु बताया है।

बाला साहब--नाना साहब के छोटे भाई थे। बाला साहब बड़े भाई नाना साहब का वैसे ही अनुसरण करते जैसे लक्ष्मण भगवान् राम का अनुसरण छाया की तरह करते थे। गंगा में प्रतिज्ञा लेने के समय भी साथ थे। ५७ के अप्रैल मास में नाना साहब के साथ क्रान्तिकारी दलों के एकत्र करने के लिए साथ ही गये थे। १६ जुलाई को कानपुर में विद्रोहियों से पराजित हो जाने पर बालासाहब, तात्याटोपे आदि के साथ महिलाओं सहित कुछ खाद्य सामग्री ले फतहपुर की ओर चल पड़े थे। तोपखाना छीन लेने का शुभ समाचार पा नाना साहब ने श्रीमन्त बाला साहब

सन् ५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के सूत्रधार, ऋषि-शिष्य

← झाँसी की रानी
महारानी लक्ष्मी बाई

होता—नाना साहब धुन्धु पन्त
← श्री मंगल पांडे

श्री तात्या टोपे

वीर वर विक्रमसिंह

सात्विक भेंट-कर्त्ता

श्रीमती वेद प्रभा जी डाबर

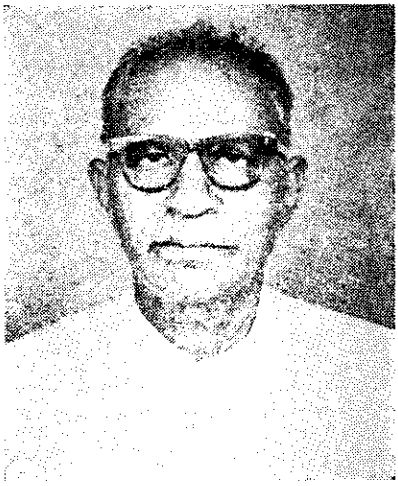

श्री रामचन्द्र डाह्याभाई पटेल
परव, सूरत

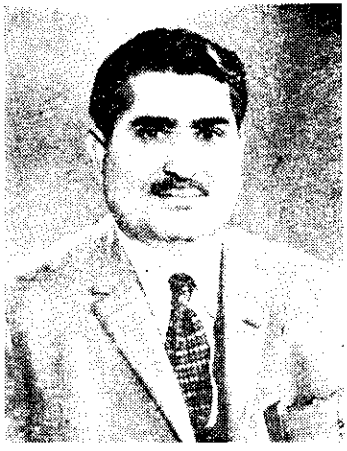

श्री जगदीशचन्द्र जी डाबर

श्री मोती गणेश भाई पटेल
मोर थाण, सूरत

श्रीमती प्रेमवती जी दर्गन

को अपना प्रतिनिधि बना कर कालपी भेजा था। इनका युद्ध कौशल और वीरता से मृत्यु के साथ खेल ५७ को भारतीय स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की एकमात्र निधि है।

तात्याटोपे—तात्याटोपें नानासाहब के सामान्य लिपिक थे। कानपुर के हाथ से निकल जाने पर इस कठिन परिस्थिति में असाधारण बुद्धि वाला तात्या ही सिद्ध हुआ। तात्या भी स्वातन्त्र्य समर में कूदे। केम्पबेल लखनऊ को चले। तात्या ने इसे स्वर्ण सन्धि समझा। निर्धन ब्राह्मण लिपिक अब पेशवा की सेना का सेनापति बन चुका था। कानपुर पर आक्रमण की योजना बनाई। बाला साहब की अनुमति भी मिल गई। विंडहम को तात्या ने घर दबाया। घोरतम संग्राम हुआ। नाना साहब और वीरवर कुंवर सिंह भी आ पहुँचे, सारी वीर गाथा स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की है।

वीरवर कुंवरसिंह—जगदीशपुर के शासक थे। अप्रैल से नाना साहब का कुंवरसिंह से पत्र व्यवहार चलरहा था। यह क्षेत्र आरम्भ से ही श्री कुंवरसिंह के वंश घरों से शासित रहा था। अंग्रेजों ने उस पर अत्याचार कर कब्जा कर लिया था। इस समय इनकी आयु ८० वर्ष की थी। युद्ध कौशल और क्षात्र भावना के ओज के कारण जगदीशपुर दूनसे जनरल आयर को भगा दिया। अंग्रेजों ने राजप्रासाद पर कब्जा कर लिया था। मन्दिर की मूर्तियों के साथ भी असहिष्णु व्यवहार किया था। सैन्यशक्ति कुंवर सिंह के पास बहुत थोड़ी थी। बुद्धि कुशाग्र थी, वृक युद्ध का आश्रय लिया। १८ मार्च १८५८ को बीबा क्रान्तिकारी आमिले। अतरौली पर हमला किया। हार हुई। मुकाबले में सेना बहुत थी। शत्रु खुशी मनाने में मस्त हो गये। 'इण्डियनम्युटिनी' में लिखा है—'सच्चेसेनानी को और क्या चाहिए था आस पास के खेतों से गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। कुंवर विजय सिंह को विजयश्री मिली। २२अप्रैल १८५८ को युद्ध करते-कराते यह संसार छोड़ा।

मंगल पाण्डे—वीरवर मंगलपाण्डे ने ब्राह्मणकुल में जन्म लिया था। पर वह शौर्य से क्षत्रिय ही थे। साथियों में भी उनकी ख्याति एक शूरवीर सैनिक के रूप में व्याप्त थी। पाण्डे अपने देश स्वातन्त्र्य-भाव को एक मास तक दबाये न बैठ सका। नेताओं की बात उसे जंची नहीं। मैदान में निकल

पड़ा। हाथ में राइफल थामे था। सार्जेन्ट ह्यूमन सामने आया, गोली दगी शव भूमि पर लोट रहा था। लेफटिनेन्ट बाह्व भी आ पहुँचा। गोली छूटी घोड़े सहित धराशायी हो गया। लेफ्टिनेन्ट संभाला ही था। तलवार का वार हुआ वहीं ढेर हो गया। पाण्डे ने अपनी राइफल से अपनी छाती पर गोली दाग ली। घायल सिंह को रुग्णालय पहुँचाया गया। २९ मार्च १८५७ को यह क्रान्ति युद्ध का प्रथम विस्फोट था। ८ अप्रैल को फांसी के फन्दे में उनकी नश्वर काया झूल गई। 'यह नाम भारत भर में सभी विद्रोही सिपाहियों के लिए उपनाम के रूप में ख्याति पा गया।'

—चार्लस-बाल

गंगा बाई—नाना साहब-जैसे भारत सपूत को जन्म देने का पुण्य एवं श्रेय गंगा बाई देवी को है। गंगा बाई सुशीला एवं नितान्त सादगी पूर्ण जीवन बिताने वाली महिला थीं। नाना साहब को माधवराव ने गोद ले लिया। पीछे नानासाहब का महल भारत की समर भूमि ही बन गया था। गंगाबाई भी रणबांकुरी नाना की छबीलीभगिनी लक्ष्मीबाई के साथ ही रहती थी। जब रानी लक्ष्मीबाई ने २०० वीरांगनाओं की वीरवाहिनी संजोई तो गंगाबाई उसमें भी महारानी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये रण में जूझ रही थी।

रानी लक्ष्मीबाई के साथ इनके स्नेह-सम्बन्ध को समझने में इतिहास-कार धोखा खाते रहे। वास्तविकता का प्रकाश तो वीरवर सावरकर ५७ ने' का स्वातन्त्र्य समर में किया है। ऋषि ने स्वकथित अज्ञात जीवनी में इन्हें 'सहचरी' नाम से उल्लिखित कराया। सहचरी, माता, भगिनी, दासी, संरक्षिका सभी हो सकती हैं। कोष को देख कर बंगाली में सहचरी का अनुवाद निहायत भद्दा सपत्नी कर दिया गया। धोखा इसलिए भी हुआ कि इतिहास कारों ने भी बिना खोज किये लिख मारा—

The Rani was supported by Ganga Bai another consort of the deceased prince. She showed Courage for superior to that of Tantya tope the Nana's general with him She Coperated.

—The exfod history of India

—By Vincent A. Smith.

विन्सेन्ट ने लिख मारा Consort अर्थात् सम्बन्धित। सर्वथा अस्पष्ट। इसे यह भी नहीं पता कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। क्या इन इतिहासों के आधार पर अज्ञात जीवनी के तथ्य परखे जा सकते हैं ?

सन् ५७ में आये चपाती, रक्तकमल का इतिहास

इस आत्मचरित्र में यह प्रसंग बड़े अनूठे ढंग से आया है। यह ऋषि के ही निर्देशानुसार ५७ में काम में लाया गया। नाना साहब आदि ने इसे शिरोधार्य किया था—

आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इंडिया में लिखा है :—

"The general unrest was indicated by the my sterious Chupatties or griddle Cakes Which began to circulate from village to village about the middle of 1856, been at the root of late rebellion.

Baboo Ram Gopal Ghosh quoted by E.P. P. 612

And the similar circulation of Lotus flowers Which went on the same time but among the regimenents only.

A messanger would come to a village, seeke out thc head-man or village elder give him six chuppaties and say-these six Cakes are sent to you, you will make six others and send them to the next village. The head man accepted the six cakes and punctually sent forward ohter six as he had been directed.

No body could say where the transmission of Chupattees began. Some witness appained that it started near Dellhi, Others perhaps with great probability thought the arrangement orginated in Oudh. The process continued for many months.

It was a common accurance for a man to come to a cantone-mentwith a Lotus flower and give it to the chief native officer of a regiment the fiower was circulated from hand to hand in the regiment, each man took it, looked at it and passed it on, saying nothing. When the lotus came to the last man in the regiment, he

disappeared for a time, and took it to the next military station. This strange process occured through nearly all the military stations wnere the regiments of the Bengal native army were cantoned.

G.D.P.P. 35-36

The exact meaning of the symbols used for such cryptic messages was never divined. The Indian government of those days had no organised Secret servic or Intelilgence department, but even if such an institution had esxisted probabily it would have been baffled. All the resources of modern detective agencies were unable to explain the tree-daubing mystery, which accompanied the Cow Killing agitation in the eastern districts of the united provinsce in my own times. I often tried to obtain reasonable explanation with out success. —वहीं

इस चपाती और कमल का इसी उल्लेख से मिलता जुलता उल्लेख श्री वीर विनायक दामोदर सावरकर ने अपने १८५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में किया है :—

चपातियाँ—यों तो ये चपातियां गेहूं और बाजरे के आटे से बनाई जाती थीं। इन पर कोई लेख भी लिखा नहीं जाता था, किन्तु जिस के हाथ में पड़ जाती थीं, इनके स्पर्श मात्र से ही उस व्यक्ति के अंग प्रत्यंग में क्रान्ति की चेतना का संचार हो जाता था। प्रत्येक ग्राम के मुख्य अधिकारी के हाथों में चपातियाँ पहुंचती थीं, वह उसमें से कुछ आहार कर बची हुई चपाती को प्रसाद रूप में वितरित कर देता था।

पृ. ७६

राज्यक्रान्ति के इन दूतों की यह सूझ नवीन नहीं थी, क्योंकि हिन्दुस्तान में जब भी क्रान्ति का मंगल कार्य आरम्भ हुआ तब ही क्रान्ति-दूतों चपातियों द्वारा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पावन सन्देश को पहुंचाने के लिए इसी प्रकार का अभियान चलाते थे। क्यों कि बेल्लोर विद्रोह के समय भी ऐसी ही चपातियों ने सक्रिय योग दान दिया था।.....ये कहाँ से आती थीं और कहाँ चली जाती थीं, यह रहस्य भी किसी को कानों कान विदित न हो पाता था। पृ. ७८

यह विवरण अनेक पृष्ठों में है। वहीं पढें।

रक्तिम कमल—क्रान्ति पक्ष का एक दूत हाथ में रक्तिम कमल लेकर चुपचाप बंगाल में एक सैनिक शिविर में प्रविष्ट हो गया। उसने वह रक्तिम कमल एक कम्पनी के सूबेदार के हाथों में समर्पित कर दिया। इस सूबेदार ने उसे आदर से देखा और अपने सहायक को दे दिया। इसी प्रकार वह रक्त कमल प्रत्येक सिपाही के हाथों में से गुजरा और जिस अन्तिम सिपाही के हाथ में यह कमल पुष्प पहुंचा उसने इसे क्रान्ति दूत के हाथों में पहुंचा दिया। बस सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो गया। क्रांति दूत इसी भाँति एक छावनी से निकलता और दूसरे सैनिक शिविर में पहुंच जाता। -वहीं पृ. ७५

यही रक्त कमल और चपातियां हैं जिनके प्रसार का आदेश योगिराज दयानन्द ने नाना साहब, झाँसी वाली रानी तथा अजीमुल्लाखां आदि को दिया है। देहली के पास से चला ऐसा ऐतिहासिकों का अनुमान है या अवध से। देहली में क्रांतिकारी साधुओं का केन्द्र महा योगमाया का मन्दिर-महरौली में था। और अवध में तो नाना साहब आदि का घर ही था। यह भी स्पष्ट है यह प्रथा नयी नहीं प्राचीन है। यही ऋषि ने कहा है। —'अलं बहु गवेषणया'

आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता

ऋषि बड़ौदा से बनारस ही गए

बा. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने 'दयानन्द चरित्र' दूसरे एडीशन के पृ. ६३ पर छापा है।

बंगला भाषा में—प्रकाशित सन् १८४६

बंगला—बारोदार चैतन मथ नामक मन्दिरे ब्रह्मानन्द और अपरापर ब्रह्मचारी सन्यासीर सहित वेदान्त विषय आलोचना हईल। आमीय ब्रह्म एयि विषये आलोचना हईल। आमीये ब्रह्म एयि बिषये ताहारा आमा के उत्तम रूप बुझाइला। पूर्वे वेदान्ताध्ययनेर समये आमि एयि विषये कियदंश बुझिया छीलेन बटे। किन्तु एखोन तहां देर निकट सम्पूर्ण रूपे बुझे ते पारिया शील ब्रह्मेर एकत्व विषये विश्वास करीते लागीलाम।

ए समये एक जन काशीवासिनी स्त्री लोकेर निकट सम्वाद पाइलान ये तथाय्य पण्डित दिगेर एक महा सभा होइले। ए सम्वाद पाइबा मात्र आमी **काशी धामेर मुखे यात्रा** करीलाम। एवं तथाय्य उपस्थित होय्या सच्चिदानन्द परमहंसेर सहित मनस्तत्त्व-विषये आलाप करीते लागिलाम। सच्चिदानन्देर निकटे सुनिलाम ये नरमदा तीरे स्थित चाणोद कल्याणी नामक स्थाने अनेक उन्नत चरित्र सन्यासी और ब्रह्मचारी अवस्थिति करिया थाकिन। आमी तदनुसारे उपस्थित होय्या अनेक योग दीक्षित साधु देखिते पालाम। इतः पूर्वे आमी कखोने योग-दीक्षित साधु देखी नाई।

आर्य भाषा :—बड़ौदा में चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और दूसरे सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर मेरी आलोचना हुई थी। मैं ही ब्रह्म हूं। इस विषय को इन लोगों ने मुझे अच्छी तरह समझा दिया था। ..... इस समय एक काशी के रहने वाली देवी से मुझे सम्वाद मिला कि वहाँ पण्डितों की एक महासभा होने वाली है।

इस संवाद को पाकर ही मैंने काशी की ओर यात्रा की। वहाँ

(काशी में) उपस्थित होकर सच्चिदानन्द परमहंस के साथ मनस्तत्त्व विषय पर आलापन करने लगा। सच्चिदानन्द जी से सुना कि नर्मदा के किनारे चाणोद कल्याणी स्थान में बहुत उन्नत चरित्र सन्न्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। तदनुसार मैंने वहाँ उपस्थित होकर बहुत योग दीक्षित साधुओं को देखा। **थियासोफिस्ट** आत्मचरित्र में भी ऐसा ही लिखा है देखो—

I procceded to Baroda. There I setteled for some time and at Chetan math temple I held several discourses with Brahmananda and a number of Brahmcharis and Sanyasis, upon the vedanta poilosphy. It was Brahmanand and other holy men who established to my entire satis faction that I was Brahma the Diety was no other then my self—my ego—

At Baroda learning from a Benaras woman that a meeting composed of the most learned scholars was to be held at a cetan locality, I repared there at once, visiting a personge as known as satchidanand Parmahans with whom I was permitted to discuss various scintific and metaphpysical subjects from him I learnt also, that a number of great Sanyasis and Brahmcharis resided ast Chanod Kalyani. In consiquence of this I repaired to that place of sanctity on the banks of the Narbada, and there at last for the first time withreal dikshits or initiated Yogis and such Sanyasis as chidashram and several other Brahmcharis.'

हिन्दी में भी **थियासोफिस्ट** का अनुवाद ऐसा ही छपा है—

बड़ौदा के चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और अन्यान्य सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर विचार हुआ····· ब्रह्म की एकता में विश्वास करने लगा।

इस समय एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह सम्वाद पाया कि वहां पण्डितों की एक महा सभा होगी इस सम्वाद के पाते ही

मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ की। और वहाँ पहुंचकर सच्चिदानन्द परमहंस से मनस्तत्त्व के विषय में बातचीत करने लगा। सच्चिदानन्द जी से मैंने सुना चाणोद कल्याणी नाम के स्थान में अनेक सन्न्यासी ब्रह्मचारी योगी रहते हैं।" —आत्मकथा पृ. २६

दयानन्द चरित्र दूसरा संस्करण बंगला में और थियासाफिस्ट की आत्मकथा दोनों ही गोविन्दराम हासानन्द की प्रकाशित की हैं।

पं०लेखराम जी ने भी लिखा अमर कण्टकके पीछे तीन वर्ष ऋषि ने नर्मदा पर बिताये। बनारस की रहने वाली देवी का मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है तथा **पं० घासीराम जी ने** भी स्वीकार किया है।

देवेन्द्रबाबू ने लिखा है—बड़ौदा में दयानन्द को एकस्त्री ने पहचान लिया फिर दयानन्द बड़ौदा के परिसर में नहीं रह सकते थे। पं. लेखराम जी ने भी लिखा—'बड़ौदे में बनारस की रहने वाली से मैंने सुना।' बनारस की रहने वाली बनारस की महिमा गायेगी, चाणोद कल्याणी की नहीं। बनारस आज भी विद्या का घर है। चाणोद कल्याणी तो बिल्कुल उजड़ गया है। किसकी महिमा है। विचार लें।

पं. लेखराम जी के नोटों को समझा नहीं गया। पं. जी ने थियासो फिस्ट की आत्मकथा को ही लिखा है। उनकी अपनी कोई खोज इस विषय में नहीं है। आत्मकथा अंग्रेजी में थियासोफिस्ट में लिखा है। बड़ौदा में एक बनारसो बाई से जाना कि 'at a certain locality'—किसी परिसर में सभा है। इसका अनुवाद नर्वदा के तट पर नहीं हो सकता। नर्बदा बड़ौदा की कोई समीपता नहीं है। पचासों मील दूर है। उसे बड़ौदा की लोकेलटी नहीं कहा जा सकता। दूसरा हेतु यह भी है कि 'उस स्थान पर पहुंचकर फिर सुना कि चाणोद कल्याणी में (जो नर्बदा नदी तट पर स्थित है) मण्डली रहती है। इससे भीं स्पष्ट हो रहा है वह लोकल परिसर चाणोद कल्याणी से दूर है। अन्य किसी स्थान पर जाने की बात किसी ने नहीं लिखी। बड़ौदा से काशी गए यही सबने लिखा है। तीसरे यह भी विचारणीय है—पृ० ३८ पर पं. लेखराम जी ने लिखा है '१९१४ को नर्बदा की दूसरी यात्रा थी। अतः सर्वथा सुस्पष्ट है कि पहली बार बड़ौदा से काशी गए, वहाँ से नर्बदा की यात्रा में प्रवृत हुए। यही अन्य थियासोफिस्ट, देवेन्द्र बाबू, उपेन्द्र नाथ मुख्योपाध्याय, पं. घासीराम जी ने बड़ौदा से बनारस जाना स्वीकार किया। अतः यह पक्ष निर्विवाद है। इसीका विस्तृत उल्लेख अज्ञात जीवनी में है।

पं उपेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय—ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक ने भी लिखा है—

"दयानन्द सब स्थान पर भ्रमण करके सब साधुओं से परिचित हो गए थे। उनमें से व्यास आश्रम के योगानन्द, **वाराणासी के सच्चिदानन्द**, केदारघाट के गंगागिरि, ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि का नाम उल्लेखनीय है। ग्रन्थ, पाठ और योगाभ्यास में समय बिताते थे। तदनन्तर मथुरा में आकर पण्डित विरजानन्द के पास विविध शास्त्र के अध्ययन में रत हुए। पृ. २७४ चरितामिधान

मुखोपाध्याय ने भी सच्चिदानन्द जी को 'वाराणासी का' लिखा है, चाणोद का नहीं।

ऋषि कैलाश गये थे—वर्तमान जीवनियों में इस आत्मचरित्र की प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों की साक्षी नहीं मिलती। मिलना बहुत कठिन है। अवधूत साधु के जीवनी की विस्तृत घटनाओं का आँखों देखा हाल मिलना इस आत्मचरित्र में स्वयं कहा तो मिला और पहले प्रकाशित जीवनों में भी संकेत बहुत मिले। संकेत स्पष्ट हैं, उन पर अविश्वास का या अन्यथा कल्पना का कोई अवसर नहीं। अनर्गल शंकायें अयुक्त हैं।

ऋषि कथित पहली जीवनियाँ संक्षिप्त हैं—

ऋषि ने मैडम बलैवडस्की और अलकाट को जो **जीवनी थियासोफिस्ट** के लिये भेजी थी वह **अत्यन्त संक्षिप्त है**।

पत्र सं० १८३—कुछ थोड़ा सा जन्मचरित्र लिखकर भेजते हैं।

,, १७८—"I shall give you a brief account of me."

पूना का सोलहवाँ व्याख्यान—जीवनी विषयक तो होना ही **संक्षिप्त** था। एक दो घण्टे में क्या क्या बताया जा सकता है। ८०० पृष्ठ की देवेन्द्र बाबू की जीवनी में केवल ५३ पृष्ठ मथुरा तक और १६ पृष्ठ आगरे तक लिखे हैं।

मथुरा आगमन के समय ऋषि की लगभग आयु ३९ वर्ष की थी—३९ वर्ष के केवल ७० पृष्ठ और बीस वर्ष के सात सौ से ऊपर वास्तव में ऋषि के प्रचार काल की जीवनी की खोज की जा सकी। अवधूत स्थिति में की यात्रा का पता भी कोई कैसे लगाता। वह तो श्रीमुख से स्वयं सुना जा सकता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि दिग्गज विद्वानों के अध्यवसाय से ऋषिवर ने अपने इस आत्मचरित्र को कलकत्ता में सुनाया था। इस जीवनी की प्रामणिकता के प्रसंग वर्तमान जीवनियों में भी मिल

जाते हैं। उनकी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं, केवल इसी जीवनी में है। देखिये :

उपलब्ध जीवनियों के उद्धरण

१. महादेव कैलाश के रहने वाले थे कुबेर अलकापुरी के रहनेवाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का है(केदार पर्वत श्रेणी का) है। **हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।**

—उपदेश मंजरी दशम व्याख्यान आगे इसे विस्पष्ट किया है।

काश्मीर से लेकर नेपाल तक हिमालय की जो ऊँचीर चोटियाँ हैं। वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष वास करते हैं। गत समय की तरह प्रायः इस समय बर्फ नहीं **पड़ती** है।

ऋषि घूमे थे तब ही कह रहे हैं—"वहां विद्वान वास करते हैं और इस समय गत समय की तरह बरफ नहीं पड़ती है।" यह दोनों बातें और किसी यात्री ने नहीं कहीं। केवल दयानन्द कह रहे हैं और इस आधार पर कह रहे है कि कैलाश के परिसर में घूमे थे: ठहरे थे, यथावसर समाधि लगा भूत को देखा था। इस घूमने का ब्योरा आप इस आत्मचरित्र में पढ़ेंगे। अन्यत्र कहीं नहीं।

मग्नम् कहाँ है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—प्रकाशित आत्मचरित्र में तथा **स्वामी सत्यानन्द जी** की खोज पर आधारित उनके लिखित दयानन्द प्रकाश में **पं० लेखराम जी आर्य** मुसाफिर लिखित जीवन चरित्र में भी अलकनन्दा स्रोत से बद्रीनारायण को लौटते हुए ऋषि 'मग्नम्' भी पहुँचे हैं। बद्रीनाथ से अलकनन्दा तक कहीं 'मग्नम्' नहीं आता है। न चारों धामों में कहीं है अतः टिप्पणीकर्ताओं ने इसे 'माना' मान कर संतोष कर लिया है। बात ऐसी नहीं है। माना ग्राम भी लौटते समय दूसरी ओर पड़ता है। अलकनंदा को पार करके वहाँ जाने का मार्ग नहीं है। अतः यह मग्नम् कोई अन्य स्थान ही है।

इस आत्मचरित्र के अनुसार और पूना प्रवचन के अनुसार ऋषि कैलाश गए थे। इस बात को स्वीकार कर हमने मग्नम् का पता लगाया। कैलाश यात्रायें पढ़ीं। उसके मार्गों की पड़ताल की। कैलाश जाने के १२ मार्ग हैं। दो मार्गों में मग्नम् मिला। बद्री नारायण वाले मार्ग को ही हमने ऋषि का मार्ग स्वीकार किया है। देखिये :

Badrinath to Kailcsh via Mana pass. 238 Miles

बद्रीनाथ से कैलाश माना मार्ग के रास्ते २३८ मील

स्थान	दूरी मील	ऊँचाई	अन्य विवरण
बद्रीनाथ	०	१०१५६	
१. माना	२		मणिभद्रपुरी ग्राम
२. बलवाणगुफा	३		मूसापानी दो मील, शाक पाडांग डेढ़ मील, ३।४ मील पर अच्छी गुफायें डेरे।
३. धस तोली	६		गुफा डेढ़ मील, बुड' चौन तीन मील, खोरजाक वोट डेढ़ मील डेरे पड़ाव
४. सरस्वती	८		डेरे, घाटा की चढ़ाई आरम्भ, ढाई मील रत्ताकोण, डेरे, आधा मील देवताल
५. मानाघाटा	८२	१८४००	चिरबिटिया, डेढ़ मील भारत सीमा।
६. पोती	६		डेरे, यहाँ तक उतराई
७. जोगोरोव	८	१६४००	डेरे, शीपुका मैदान ३ मील; चरंगला ३ मील
८. रामूराव	१६		डेरे दस मील, ३ मी० उतराई।
९. शंकरा	१०		डेरे
१०. सत्तुखाना	२२		डेरे, कुली ३ मील पर
११. थुलिङ गोम्पा	७	१२२००	(यहाँ तक कुल १०२ मील हुआ) तीन मील खड़ी चढ़ाई यह थुलिङ़ गोम्पा पश्चिमी तिब्बत का सब से बड़ा प्रसिद्ध मठ है। भारतीय पण्डितों ने यहां बैठ कर ग्रंथों का उल्था किया।
१२. मङगनंग	३१		यहाँ डे पुंग विहार की शाखा है मङनङ् नदी भी पार करनी होती है।

१३. दापायादाव १४ १४००० जोड़ मठ
१४. नाहब्रा मंडी साढ़े ६ मील
१५. डोङपूगोम्पा १४
१६. दोनगू साढ़े ५ मील
१७. सिवचिलमण्डी १६ मणिथडा साढ़े ७ मील मील + गोम्बा चिन साढ़े तीन मील
१८. गुनियाङ्ती नदी साढ़े ४ मील
१९. ज्ञानिमामंडी
२०. छूमिक्शला साढ़े १६ मील
२१. कैलाश (तरछेन) १०३ १५१००

कुल २३८ मील

स्वामी प्रणवानन्द जी ने १५ वार कैलाश यात्रा की १७ वार मान सरोवर गए। १२ मार्गों की तालिका में से यह एक है। मङनंग १३३ मील है। मङनङ से कैलाश १२५ मील है। बद्रीनारायण से २८३ मील पर माना घाटा पार करके १०० मील पर थुलिङ मठ पहुँचते हैं। हतभाग्यता अब तो चीन ने सब घर दबाया है। कौन जायगा।

तरछेन से कैलाश की परिक्रमा आरम्भ हो जाती है पास में ही मानसरोवर और और राक्षस ताल हैं। यहाँ सब स्थानों पर ऋषि घूमे थे। यदि अलकनन्दा के स्रोत वाली गति से चले हों तो ऋषि को यह यात्रा केवल ४ दिन की होती है। यदि अवधूत अवस्था के ४०।४० मील चले हों तो ६ दिन की यात्रा हुई होगी। यह सब यात्रा इसी **उत्तरा खंड** के पौने दो **वर्ष** के काल में हुई है। देखो

जी० च० पं० लेखराम जी लिखित पृ० ३१

ऋषि का हिमालय के समस्त पर्वतीय स्थलों में घूमना

"बद्रीनारायण में रावल जी ने कहा—'प्रायः ऐसे योगी लोग इस मन्दिर के देखने के लिए आया करते हैं।"

सुनकर ऋषि ने संकल्प किया—"उस समय मैंने (दयानन्द ने) यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि समस्त देशों और विशेषतः पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूँगा।" —आत्मचरित्र पृ० ३४

थुलिङ् गोम्पा और बद्रीनारायण मन्दिर का भक्ति भाव का सम्बंध न जाने कब से बना चला आता है। यह भी ऋषि को पता लगा होगा। उधर जाने में आकर्षण हुआ होगा। पढ़िये—

'थुलिङ् पश्चिमी तिब्बत का सबसे प्रसिद्ध मठ है। कितने ही अमूल्य और प्राचीन संस्कृत ग्रंथों को तुर्कों ने जलाकर नष्ट कर दिया। नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान सन् १०४२ में यहां आकर नौ महीने ठहरे थे। कई ग्रन्थों का प्रणयन किया था। कई भारतीय पण्डितों ने यहाँ रहकर पाली ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया था। हंस के बड़े अण्डे के बराबर जौ का दाना अन्य अपूर्व वस्तुओं में यहां रखा है। लगभग प्रति तीन वर्ष बाद १०० लामा-यहाँ रहनेवाले आते जाते हैं।

शीत काल में बद्रीनारायण के पट बंद होने से पूर्व मन्दिर के लिए कुछ प्रसाद और भेंट भेजी जाती है। रावल भी मन्दिर के कुछ प्रसाद और भेंट थुलिङ मठ के लिए भेजते हैं।

—कैलाश मानसरोवर हिन्दी पृ० ३९३-३९४

हृषीकेश से श्रीनगर—इसआत्मचरित्र में हृषीकेश से श्रीनगर(काशमीर) जाने का उल्लेख है, जो थियासोफिस्ट में नहीं। वहां संक्षिप्त होने से यह प्रसंग ऋषि ने छोड़ दिया। कोई विशेष उल्लेखयोग्य घटना थी नहीं।

जाने में समय ३ सप्ताह का लगा है। क्या यह संकलनकर्ता की मन की उड़ान है? या कोई मार्ग भी है? जा भी सकते हैं या नहीं? यद्यपि ऋषि उदानजयी थे, उनके लिए कोई भी मार्ग दुर्गम नहीं था। फिर भी क्या हिमालय यात्रा के अप्रसिद्ध स्थानों का वर्णन और यात्रा संभव भी है या नहीं? यह प्रश्न थे जिनके तथ्य रूप समझने का पूरा प्रयत्न किया गया। इस आत्मचरित्र का यात्राक्रम इस प्रकार है—

हृषीकेश से श्रीनगर ३ सप्ताह

श्रीनगर से अमरनाथ। अमरनाथ से श्रीनगर।

श्रीनगर से क्षीरभवानी। क्षीरभवानी से श्रीनगर।

श्रीनगर से गान्धार बल, गान्धार बल से तुलमुल, क्षीर भवानी।

—१५ दिन

सिन्धुनद के किनारे-किनारे ओयाइल्ला आदि से कंगन।

कंगन से माटायन, माटायन से कार्गिल।

कार्गिल से मुलबे चम्बा, बौद्ध खर्बु, नुरुल, लिकिर, गुम्फा, बासगो, नीमु, ले, हिमिसमठ, पितुक, फियांग गुम्पा लेशहर, हिमिस गुम्पा।

ले से हृषीकेश

लिकिर गुम्फा, कार्गिल, **शालीमार**, शालीमार बाग, श्रीनगर धनुष तीर्थ,अगस्त्य आश्रम,ऊषी मठ, रामपुर, रुद्र प्रयाग हृषीकेश।

हृषीकेश से मानसरोवर

हृषीकेश से देहरादून, यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी, गंगोत्तरी, गोमुखो, (१॥ योजन पर), गंगोत्तरी, त्रियुगीनारायण १॥योजन पर, अगस्त्य मुनि, गुप्त काशी, केदारनाथ, जोशीमठ, बदरीनाथ। ब्रह्मकुण्ड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी, अलखनन्दा, स्वर्गारोहणशिविर, अलकापुरी, मानसोद्भेद तीर्थ, मानसरोवर, कैलाश,राक्षस ताल, कैलाश से लासा—लासा से दारजिलिंग किचु नदीपार कर लेता स्थान में ब्रह्मपुत्र के उत्तर तट में, च्याकसामपुल, कायरा घाटी, कामपापरत्सि, न्याकरत्सि, उपसिगांव, गियांत्सो (ची), फारि, चुम्बी, इउक (भारतसीमा में) इउक से दारजिलिंग।

कलकत्ता—नाटोर, शिलीगुडी, वारिक पुर, कलकत्ता, गंगासागर, नवद्वीप, कामरूप, कामाख्या, परशुराम, समस्तीपुर, दरभंगा, वेतिया, नेपाल कलकत्ता, पुरी, नासिक, शृंगेरी, वंगलौर, महीशूर, कांची, त्रिचनापल्ली, मदुरै, रामेश्वर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, काष्ठयान से तैलमन्नार, कोलम्बो, काण्डी, आदमम·दिर, अनुराधापुर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, रामेश्वर में नाना आदि का मिलन।

इस यात्रा में थियासोफिस्ट वाले सब स्थान आगये हैं। वह सक्षिप्त है, यह आत्मचरित्र विस्तृत है। हिमालय में ऋषि ने दो वर्ष लगाये। यह सब यात्रा की तथ्यता का निर्णय करना था। यह स्थान भी हैं या नहीं। यात्राक्रम ठीक है या नहीं ? क्योंकि उपन्यास हो तो इतना लम्बा यात्रा क्रम ठीक नहीं बैठ सकता। उपन्यास हो तब भी रोचक है। अलख धारी के उपन्यास की तरह। पर मैं इसकी ऐतिहासिकता जांचना चाहता था। कोई हिमालय कैलाश तिब्बत यात्रा का नकशा मिले। इसके लिए देहली में खोज की। कुछ पता नहीं चल रहा था। बाबु कौशल किशोर जी Indian School of international studies इण्डियन स्कूल आफ इन्टर नेशनलस्टडीज में अकाउण्ट आफिसर हैं,उनसे जिकर आया। उन्होंने कहा मैं ऐसे आदमी के पास ले चलता हूं जो हिमालय की चप्पा-चप्पा भूमि को जानता है। बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मुझे अपनी संस्था के मूर्धन्य **श्रीराम राहुल जी** के पास समय निर्धारित कर ले गये। पता चला यह गौरीशंकर शिखर के विजयी पर्वतारोही दल के घटक हैं। उन्होंने बड़ी उदारता से डेढ घण्टे तक ऊपर का यात्राक्रम सुना। बहुत सी लाभ-दायक नवीन जानकारी भी दी। सब बहुत ध्यान से सुना। अन्त में कहा सब यात्रा बिलकुल ठीक है। स्थानों का यही क्रम है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने पूछा - यह यात्रा कितने दिन में की जा सकती है ?

राहुल जी—साधन हों तो एक वर्ष में हो सकती है।

मैं—यह यात्रा तो साधनहीन साधु ने की थी !

राहुल जी—तो दो वर्ष में बड़े आराम से हो सकती है।

वे ऋषि दयानन्द का नाम सुनकर चकित हो गये।

बोले – ऐसा था दयानन्द !

उन्होंने चाय आदि मंगा कर स्वागत किया। चलते समय The 'Himalayan Border Land' १८।०रुपये दाम की अपनी पुस्तक भेंट में

दी। मैं भी अपनी 'पातंजल योग साधना' भेंट में दे प्रसन्न था। साधु की भेंट को बड़े सम्मान से स्वीकार किया पुनः दर्शन देने की बात भी कही।

अलकनन्दा स्रोत के प्रसंग में हम लिख चुके हैं, एक मास की दुर्गम यात्रा असाधारण योगी ने केवल १२ घण्टे में की थी। उसके लिये यह हिमालय यात्रा यदि साधन सम्पन्न लोगों के लिए एक वर्ष की है तोउसके लिए तो दो मास से भी कम की हो सकती है। विश्राम का समय अलग।

श्री राहुल जी ने तिब्बती शब्द जो यात्राक्रम में आये थे उनकी व्याख्या की थी :—

चम्बा—बुद्ध का नाम है। पत्थर पर रंगीन चित्र को चम्बा कहते हैं। लिकिर गुम्फा—लुकिल, सांप, नाग किल=कुण्डली=सांप की कुण्डली गुंफा=मठ विहार।

फियांग गुम्पा—ले से इण्डस नदी से मानसरोवर की ओर ३० मील है।

नीमु—समीपस्थ, ले नगर के पास।

बौधखर्बु—खर्बु किला, गुफा, अब शमस खर्बु कहते हैं।

हिमिस—लामागुफा।

वासगो—बड़ी मूर्ति।

माटायन का अर्थ बौन-बौन बुद्ध लोगों से उलटा करते हैं। परिक्रमा बायें हाथ से करते हैं। स्वस्तिक भी जर्मनों की तरह उलटा बनाते हैं।

सत्पथ—सत्पथ से आगे शीत प्रधान चौखम्बा शिखर है।

राक्षसताल—खारा पानी होने से कहाता है।

मानसरोवर—मीठा पानी है। नीचे से पानी मिलता है।

किचुनदी—हैपी वैली में है। किचु-पानी।

च्याकसाम—खाल की किश्ती गोल होती है।

चकसम—घाट।

गियांत्सी—ची है। सी बोल लेते हैं।

श्रीनगर से श्रीनगर का मार्ग— मैंने पूछा, क्या श्रीनगर से श्रीनगर भी कोई मार्ग है ?

राहुल जी बोले—"टौंस नदी के किनारे २ घाटी से ने लांग पास। हर्सिल, वास्पाघाटी, चित्रकूट, सतलुज, कुल्लु, मनाली, रोहतांगपास, लाहुल, चम्बा, त्रिलोकीनाथ, फांगी (पांगी) या चम्बा से श्रीनगर जाते हैं।

हर्सिल में स्वामी जी गुफा में रहे भी थे। ऋषि का हस्तलेख आज भी वहाँ विद्यमान है। श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ने भी देखा था।

यह सब वृत्तान्त सुन कर मैंने सोचा ७० मील १२ घण्टे में हिममार्ग को लाँघने वाले उदानजयी के लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

काशमीर यात्रा

इस आत्म चरित्र के अनुसार हृषीकेश से काशमीर गये। ३ सप्ताह लगे। हृषिकेश में इतना ही व्योरा दिया—"Passing certain time' लिखा है। केदार Two month with Gangagiri कौन से नहीं लिखा Autum was setting in पतझड़ में श्रीनगर से चल पड़े। कोई निश्चित मास नहीं दिया। शिवपुरी में शीत के चार मास रहे। पीछे म. द. जी. च. में लिखा है— काशमीर से एक बार निमन्त्रण भी आया था। महाराज नहीं गए। यदि महाराज श्री पहले काशमीर न गए होते तो निमन्त्रण अवश्य स्वीकार कर लेते।

कैलाश यात्रा—

१२ घन्टे में अलकनन्दा के स्रोत देखने के बाद,उस समय संभवतः चैत्र लगा होगा, रामपुर आने के पीछे ४मास कोई यात्रा नहीं की यह संभवतः कैलाश यात्रा काल है। वहाँ से कलकत्ता लौटे हैं। कलकत्ता से सन् ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लिया है, जिसे कलकत्ता में बताना उचित नहीं समझा। एक तो थियासोफिस्ट में इस का उल्लेख आ ही गया था। जिसका विवरण देने में असमर्थ होने के कारण थियासोफिस्ट को आगे वृतान्त नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कानपुर पर नाना साहब का आधिपत्य हो जाने पर निश्चिन्त से हों, अमरकन्टक की ओर दूसरी वार चले गए हैं, देखो लेखराम जी संगृहीत जीवन चरित्र। पुनः कानपुर का पतन सुनकर लौटे हैं और विठूर का विध्वंस और बाघेरों का शौर्य अपनी आँखों से देखा है। दक्षिण यात्रा क्रान्ति में सफलता न देख दक्षिण की यात्रा की है। रामेश्वर में क्रान्ति संग्राम के अन्तिम समाचार मिले। संभवतः नेपाल के साथ न देने के पीछे यह मिलन और प्रतीक्षा निश्चित रूप से पूर्व निश्चयानुसार हुई है। सन् १८५८ की २६ जनवरीबहादुर शाह की तकदीर का फैसला अंग्रेजों ने किया। ४० दिन लगे। सपरिवार पैगु में रखने की सजा हुई। १८५८ में महारानी ने प्रधान अपराधियों को

छोड़, शेष अपराधियों के अपराध क्षमा किये। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की —'जिन्होंने हथियार उठाये थे वे अपने घर जाकर शान्ति से अपने काम में लगें, उनके अपराध क्षमा किये जायेंगे। जनवरी से पहले घोषणानुसार जो कार्य में लग जायेंगे उनके अपराध क्षमा। उन पर दया की जायगी।"

—सन् ५७ का इतिहास

सन ५८ की इस घोषणा के उपरान्त जनवरी ५९ तक प्रतीक्षा कर दयानन्द सम्भवतः दक्षिण से गुजरात होते हुए लौटे और १४नवम्बर १८६० को अर्थात् १९१७ संवत् के कार्तिक मास में मथुरा में श्री दण्डी जी के चरणों में पहुँचे।

तिब्बत की यात्रा

जोखम भरी तिब्बत की यात्रा ऋषि ने अवश्य की है। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—

प्रश्न—मनुष्य की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ?

उत्तर—त्रिविष्टप में अर्थात् जिसको अब तिब्बत कहते हैं। ऋषि प्रत्येक बात का निर्णय साक्षात् देखकर करते थे। सुन सुनाकर नहीं। देख कर निश्चय किये बिना आदि सृष्टि तिब्बत में नहीं लिख सकते। यहाँ कोई युक्ति नहीं दी गई है। अन्यत्र सर्वत्र अकाट्य युक्ति का प्रयोग करते हैं। यहाँ केवल निर्णय मात्र है। यह निर्णय देखकर ही हुआ। इसीलिए इस आत्मचरित्र के अनुसार ऋषि लंका में आदम मन्दिर ADAM PEAK देखने गए। आदम मन्दिर भी मानव का प्रथम उत्पत्ति स्थान है। दोनों ही भारत में थे। फिर ऋषि क्यों देखने नहीं जाते।

इस आत्म चरित्र में तिब्बत को जितनी घटनायें दी हैं, इसी प्रकार की मिलती जुलती अन्य तिब्बत यात्रियों ने भी लिखी हैं। अतः ऋषि का यह तिब्बत का वर्णन आँखों देखा है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि तिब्बत में बहुत उच्च कोटि का योग भी सुनने में आता है। The Lost World पुस्तक में दो चेपटर इसी पर दिये हैं। यहाँ स्थान नहीं कि उनका उल्लेख किया जाये। इतना ही ध्यान दिलाना आवश्यक है। योग के लिए भी ऋषि को तिब्बत जाना पड़ा होगा।

तिब्बत की मिलती घटनाएं—तिब्बत के दण्ड—तिब्बत के जेल-खाने बहुत ही भयानक हैं। ··· ····· दोपहर दिन को भी उनके भीतर उजाला नहीं पहुंचता। ऐसे ठण्डे देश में मकान के भीतर धूप का न पहुंचने देना ही एक दारुण दण्ड है।

जिसके हाथ काटने होते हैं, पहले हाथों को खूब कसकर बांध दिया जाता है। इस भाँति २४ घन्टे बन्धे रहने पर वह भाग चेतना रहित हो जाता है या रस्सियों से बान्ध कर वृक्ष में लटका दिया जाता है। पकड़ कर नीचे खींचने से टूट जाती हैं।

—तिब्बत में तीन वर्ष—ले. श्री इकाबाई कावागुची पृ. २७६

सबसे कड़ा दण्ड यहाँ पानी में डुबोकर मारने का है। चमड़े की मशक में बन्द करके पानी में डाल देते हैं। मरने पर पानी में टुकड़े कर फेंक देते हैं। सिर काटकर प्रदर्शन के लिए रखा रहता है।

—वहीं

अन्त्येष्टि में पक्षियों को खिलाने का विधान भी है। यह विधि **'लागापो'** कहलाती है।

कैदियों को एक मुट्ठी अन्न मिलता है।

एक दारुण घटना—'सामने जनता का हृदय सम्राट्, सच्चरित्र पूर्ण विद्वान् लामा का शरीर, धर्माधिकार के वस्त्रों से शून्य जेल के वस्त्रों में विराजमान था। जनता रो रही थी।

लामा ने अपना जाप समाप्त किया। १।२।३. तीसरी वार अंगुली उठाई। संकेत दिया। जनता चिंघाड़ मार कर रोने लगी। जल्लादों को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वे भी रो रहे थे।

लामा ने कहा—'तुम लोग क्या कर रहे हो। मेरा समय आ गया है।'

जल्लादों ने दुःख से लामा की कमर में रस्सी बान्धी। भारी पत्थर बान्धा। लामा को जीते जी ब्रह्मपुत्र नदी के पानी में डाल दिया। थोड़ी देर बाद रस्सी खेंच कर जांच की। अभी प्राण पखेरु नहीं उडे थे। फिर पानी में फेंका। पुनः दूसरी वार जांच की। जीते थे लामा। सब चिल्ला उठे लामा को छोड़ देना चाहिये। यही कानून है। लामा ने मना किया। कहना मान जल्लादों ने तीसरी वार फिर पानी में डाल दिया। निकाला। शरीर प्राण हीन था।

यह था धर्मगुरु को प्राणदण्ड। लामा का नाम था 'सेगचेन कोरगी-चेन'। अपराध था भारतीय शरत्चन्द्र दास को पढ़ाना। दास भारत लौट चुका था। पीछे तिब्बत सरकार को दास के गुप्तचर होने का संदेह हो गया था। —पृ. १५

तिब्बत की कठिन यात्रा

पृ. ५५ पर लिखा है—"मानसरोवर तक मुझे (चीन यात्री कावा-गुची को) सीधा उत्तर की ओर जाना था। सूर्य ताप बहुत कम पहुंच रहा था। कहीं-कहीं पर मेरा पैर १४।१५ इञ्च तक बरफ की चट्टानों में धंस जाता था।

खेमे मिले, मैंने कहा—"मैं लासा से आ रहा हूं। कैलाश जाऊंगा। विश्राम करना चाहता हूं। स्थान मिल गया। ऐसा दयालु कभी कोई तिब्बत में मिलता है। वहां से 'गोलांग रिंग पाँच' की गुफा पर पहुंचा। १०० मील के आस पास के लोग इनके भक्त थे। सोने से पहले तीन बार यह लोग गुफा को नमस्कार करते थे। परिचय के बाद ठहरा। विदा के समय उन्होंने पूछा—तुम ऐसे जंगलों में फिरने योग्य नहीं हो। यहाँ क्यों आये ?"

७ जुलाई को विदा मांगी। उन्होंने रोटी मक्खन आदि प्रायः बीस पौंड का सामान मुझ को दिया। और कहा यदि तुम्हारे पास खाद्य सामग्री यथेष्ट न होगी तो तुम अवश्य ही मर जाओगे। ८५ पौंड बोझ अपनी पीठ पर लादकर यहां से विदा हुआ। पृ. ६१-६३

कैलाश की राह के विषय में पूछा। बोले—"गुफा से चलकर दो तीन दिन में एक जंगली जाति के लोगों में पहुंचोगे। वहां से आगे १५।१६ दिन तक निर्जन राह से जाना होगा। इस यात्रा में सहायक मिलना असम्भव है। सम्भव है बसती में पहुंचने पर लूट लिए जाओ।

पृष्ठ ६०

'मेरी तिब्बत यात्रा' नामक अपनी यात्रा पुस्तक में यहां पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने कहा है—"मोट (तिब्बत) में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता ..... जहाँ पर लोग मृत्यु से खेलते हैं।'

पृ. ३५

इनाम इकराम देने पर भी यदि तिब्बत में भलामानुस मिल जाये तो उसका शुक्रगुजार होना चाहिये। पृ. ३९

यह यात्रा १७९७ की है। ऋषि की यात्रा १८५५ सन् की है। अर्थात् ५८ वर्ष पीछे की। ऋषि विहंगम अवधूत यात्री थे। खाने को भी कुछ साथ न था। किस योग बल से यात्रा की होगी, योग की बात है। इसीलिए कहते हैं ऋषि की लीला विचित्र है।

हजरत ईसा का भारत में योगाभ्यास

अब से ७२ वर्ष पूर्व लाला जयचन्द्र जी मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने जालन्धर शहर से १८९९ सन् में मि. निकोस नोट विच रूसी पर्यटक के, राजधानी लद्दाख के लेह स्थित बौद्ध मठ से जानकारी प्राप्तकर ह. ईसा के भारत में योगाभ्यास और अध्ययन के वृतान्त फ्रांसीसी और अंग्रेजी का अनुवाद उर्दू में प्रकाशित किया था। यह प्रकाशन १८९४सन् के आरम्भ की बात है। इससे ईसाई जगत् में बड़ी भारी हलचल मची। ईसाईयों ने इन हालात को झूठा बताया बनावटी तक कहा। निकोस नोट विच को धोखा देने वाला बताया। अन्य बहुत सी चालें चलीं। एक मेम महोदया ने तो लिख मारा कि नोट विच लद्दाख गए ही नहीं। किसी ने लद्दाख में उनको नहीं देखा, न किसी ने उनका नाम सुना। लद्दाख के यूरिपियन मिशन के मिशनरी मि. शा ने लिखा कि नोट विच ने कभी तिब्बत में पैर भी नहीं रखा। मेक्स मूलर ने इस सब इतिहास को अविश्वसनीय लिखा। डा. हेल साहब ने अमरीका के रिव्यु समाचार पत्र में इसके विरोध में लिखा।

ईसाईयों के इस खण्डन का हमारी तरह मिस्टर वीरचन्द, जी आर गाँधी, विश्व की रिलिजियस पार्लियामेंट के भागीदार ने १८९४ में अंग्रेजी में खण्डन छापा सब ही आरोपों का प्रबल खंडन किया। १८९५ सन् में नोट विच ने अपनी पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण छपवाया और सारे ही पूर्व पक्ष का प्रबल मुंह तोड़ उत्तर दिया।

यह उर्दु की पुस्तक— 'युसुह मसीह की नामालूम जिन्दगी के हालात' मुझे बा. विश्वम्भर दयाल जी, मन्त्री आर्य तर्क शालिनी सभा दिल्ली ने प्रदान की। इसमें ६६ पृष्ठ हैं। सारी तो दी ही नहीं जा सकती। संक्षिप्त देना भी स्थानाभाव से अनुपयुक्त ही होगा। कोई सज्जन दान भेजेंगे तो छपा दिया जाएगा। यहाँ तो इतना ही विचार है कभी ईसा की इन घटनाओं पर पंजाब आ० प्र० सभा के मन्त्री ने प्रसन्नता ही प्रकट नहीं की अपितु पुस्तक को उर्दु में छापा। और आज का प्रतिनिधि सभा का मन्त्री उन्हें झूठा बता रहा है।

भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हें सुमति प्रदान करें।

०:—.०

सहयोगियों का आशीर्वाद

प्रभु की प्रेरणा से ही योगाभ्यास को बीच में छोड़कर इस पुस्तक के संग्रथन में संलग्न हुआ। मैंने इसे प्रभु का आदेश जानकर पालन किया अब प्रभु से यही अभ्यर्थना है कि किसी गुफा में प्रवेश करा योग की अग्रिम साधना को सफल बनावे।

वैदिक साधना आश्रम, रोहतक, आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के भेंट कर्त्ता ऋषि भक्तजनों तथा अनुशीलन में साथ देने वाले आर्य वान प्रस्थों को आशीर्वाद।

इस आत्म चरित्र आज्ञात जीवनी को आद्योपान्त हाथ से लिखकर रखनेवाले और अप्रकाशित लेखों की भी प्रतियां देनेवाले तथा लालाचतुर-सेन जी गुप्त सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि श्री प्रेमचन्द्र जी शास्त्री संशोधक शास्त्री संशोधक, जिनके अनर्थक परिश्रम से यह बृहत ग्रंथ इस सुन्दर रूप में निकल सका। सदा सहयोग प्रदान करने वाले दिल्ली के सर्वोत्तम कलाकार श्री आशाराम जी शुक्ल ने समयाभाव में भी सब दो रंगे चित्र **ऋषि दयानन्द की अपूर्व छटा के साथ** निर्मित किये। योगाभ्यासी फोट-ग्राफर श्री अर्जुनदेव जी गौगिया, कलकत्ता निवासी ने ये सब फोटो भेंट स्वरूप प्रदान किए। योग साधना संघ-कलकत्ता के योग साधकों तथा अन्य सभी प्रकार के सहयोगी व्यय करने वाले भेंट देने वाले योग प्रेमियो को हृदय से आशीर्वाद देता हूं। भगवान् योग में उनकी रुचि को दिन-प्रतिदिन वृद्धि दें।

कामाख्या मन्दिर के निर्माण में ७०० ब्राह्मणों की बलि

महर्षि दयानन्द ने अपने आत्मचरित्र में दर्शाया है कि कामाख्या मन्दिर के विभिन्न समयों पर हुए निर्माण एवं पुनर्निर्माण के अवसरों पर क्रमशः १५१ ब्राह्मण बालकों, १४० मनुष्यों एवं ८०० ब्राह्मणों की बलिदी गई थी पृ० २३०इतिहास के ज्ञान व स्वाध्याय से शून्य एक प्रान्तीय सभा के विद्वान् महामन्त्री ने भद्दी भाषा में इस ऐतिहासिक तथ्य का खण्डन ही कर डाला। विस्तार में न जाकर यहाँ संक्षेपतः इतिहास के कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

❀'सती के नाम से प्रतिष्ठापित कामाख्या मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदी से घिरी हुई सुन्दर नीलाचल पहाड़ी पर कामरूप जिले में गौहाटी से दो मील पश्चिम में २६° १०' उत्तरी रेखांश व ९१° ४५, पूर्वी अक्षांश में अवस्थित है। परम्पराओं के अनुसार मूलतः मन्दिर का निर्माण महाभारत के समय में प्रतिष्ठित एक राजकुमार नरक द्वारा हुआ था और उसने पाषाण खचित मार्ग जल से पहाड़ी के ऊपर तक बनवाया था जिसका अस्तित्व अब भी है। नर-नारायण द्वारा इसका पुनर्निर्माण लगभग १५६५ में हुआ जिस अवसर पर देवी को १४० नरमुन्डों की भेंट चढाई गई। किन्तु नर-नारायण के मन्दिर का थोड़ा भाग ही अब शेष है।"

—'इम्पीरियल गजैटीयर ऑव इन्डिया'ईस्टर्न बंगाल एण्ड आसाम पृष्ठ५४६।

❀"Kamakhya—A temple sacred to Sati, which stands on the beautiful Nilachal hill overhaging the Brahmaputra, about two miles west of Gauhati in Kamraup District, Eastern Bangal and Assam in 26°, 10, N. and 9 10, 45 E. According to traditions the temple was originally built by Narak, a prince who is said to have flourished at the time of Mahabharata, anb to have Constructed a stone-paved causeway up the hill, which is still in existince. It was rebuilt by Nar Narayana about 1965, and on tne occasion of its consecration 140 human heads were offered to the goddess, but only a small portion of Nar-Narayam's temple now remains."

—Imperial gazettere of India, Eastern Bengal, Assam, p.546

—*सर एवडर्ड ने निष्कर्ष निकाला है कि उस अवसर पर १४० मनुष्यों को नरबलि के रूप में भेंट चढ़ाया गया।.....सर एडवर्ड गेट ने हयग्रीव के लिये सात सौ मनुष्यों की बलि का भी उल्लेख किया है।

—हिस्ट्री ऑफ कूच बिहार पृ० १५८ १५९।

---

* Sir Edward has concluded that on this occasion 140 men were offered as human sacrifices.....Sir Edward Gait has also referred to seven hundred human sacrifices to Hayagriva."

— History of Cooch Bihar, p. 158, 159.

इस प्रमाण संग्रह के लिए हम श्री भगवत् दुबे दफ्तरी पुरातत्त्व पुस्तकालय नेशनल म्यूजियम का हार्दिक आभार मानते हैं। स्वाध्याय के क्षेत्र में ऐसा गहन ज्ञान अच्छे अच्छे पुस्तकालय निर्देशकों व विद्वानों में भी नहीं मिलता खोज के अनेक प्रसंगों पर इनसे अपूर्व जानकारी मिली है। ऐसे सन्तोषी जीव की पदोन्नति करें, ऐसा अधिकारियों से अनुरोध है।

योगी के आत्मचरित्र का अनुशीलन

आचार्य श्री पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री बी.ए., भू० पू० मन्त्री बंगाल विहार आर्य प्रतिनिधि सभा के ४० वर्षीय अथक परिश्रम से संग्रहीत ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के तथ्यों की जांच करने के लिए मैं मार्च १९७० में व्यासाश्रम की खोज में चल दिया। जो चाणोद कर्णाली के परिसर में है इतना तो जीवन-चरित्रों के अध्ययन से मुझे ज्ञात था। चाणोद कर्णाली कहां है। किस मार्ग से कैसे जाऊँ ? यह जानना अभीष्ट था।

सार्वदेशिक को टेलीफोन किया, क्योंकि सार्वदेशिक में ही यह आत्म चरित्र 'अज्ञात जीवनी' के नाम से प्रकाशित हो रहा था। वहाँ से कुछ भी पता न चला। उन्होंने लाजपत नगर में किसी स्नातक महानुभाव का पता दिया। उनके पास प्रोफेसर वेदव्रत महोदय को भेजा, कुछ पता न चला।

पातंजल योग की साधना—ऋषि दयानन्द के नाम से अज्ञात जीवनी में सारगर्भित ढंग से अत्यन्त सरल आर्य भाषा में आई थी प्रामाणिक योग दर्शन की संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दू, उर्दू, गुजराती आदि अनेक भाषाओं की विद्वानों में प्रसिद्ध पचासों टीकाएँ मैंने पढ़ीं थीं। पर व्यास भाष्य भोज-वृत्ति, वाचस्पति मिश्र का विवरण, विज्ञान भिक्षु का भाष्य और योग वार्तिक आदि सभी टीकाएँ पढ़ने पर योग और योग साधना के सम्बन्ध में मेरी पचासों शंकाएँ निवृत्त नहीं हुई थीं। उनके समाधान ढूँडने के लिए पचासों दूसरी सभी मत मतान्तरों की योग पद्धतियों का अध्ययन किया था।]इनकी तालिका के लिए सरल हिन्दी भाषा में लिखे मेरे छोटे से हिन्दी योगदर्शन की शुद्ध बोध वृत्ति के अध्यात्मीयम् में पृष्ठ ३ से ७ तक देखें।]

शंकाएँ वैसी की वैसी बनी रहीं, पर जब-जब सार्वदेशिक में प्रकाशित इस आत्मचरित्र को पढ़ा तो मेरी शंकाएँ निर्मूल होती गईं, परन्तु इस आत्मचरित्र का ऐतिहासिक और भौगोलिक स्वरूप शंकाओं से भरा पड़ा

था। योग दर्शन की इसमें सारगर्भित व्याख्या होने के कारण यह अविस्मरणीय नहीं जंचता था, क्योंकि विद्यमान आर्य जगत् और पौराणिक जगत का कोई भी विद्वान् से विद्वान् योगाभ्यासी मेरा समाधान न कर सका था।

योग की खोज में— ही मैंने बीसियों वर्ष गंवा दिये थे। पांच गुरु भी बना चुका था। योग न मिलने पर उनसे निवेदन कर दिया था, कि मैं सदा आपको गुरु मानता रहूंगा पर आप मुझे शिष्य रूपेण घोषित न करें, क्योंकि मेरा समाधान नहीं हुआ है। घोषणा पर मेरा प्रतिवाद करना सत्य की रक्षा के लिये और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये अनिवार्य हो जायेगा। इस प्रकार के भी अनेक प्रसंग आये कि मुझे उन गुरुओं की संगत में ही उनके समक्ष उनके सिद्धान्तों का आत्मरक्षार्थ प्रतिवाद करना पड़ा। यद्यपि वे मुझे अपने २ मठों का उत्तराधिकार सौंपना चाहते थे। जिसको मैंने आदर प्रदर्शित करते हुए भी स्वीकार न किया। मुझे योग साधना का मार्ग इस 'योगी का आत्म चरित्र' [अज्ञात-जीवनी] से ही मिला था, इसलिये इसकी ऐतिहासिकता और भौगोलिकता को जांचना बहुत आवश्यक था।

इस विषय में अब तक छपे ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र मौन सा धारण किये थे। क्या उनके मौन से इसे अप्रामाणिक मान लिया जाय या उनके साथ इसका किसी प्रकार समन्वय हो सकता है। इस विचार को लेकर मैंने ऋषि दयानन्द के दसियों जीवन चरित्र पुनः पढ़े, जिनके उद्धरणों द्वारा इस आत्म चरित्र की परिपुष्टि और उनके पुनरध्ययन से प्राप्त ऋषि जीवन सम्बन्धी नवालोक से उपलब्ध समन्वय आगे इस प्राक् परिपोषण में पढ़ेंगे।

इस पुनर अध्ययन में देवेन्द्र बाबू के लिखित 'महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र, में पंडित घासीराम जी की दी हुई टिप्पणी में चाणोद, कर्णाली का पता चला। बड़ौदा से चाणोद कर्णाली को छोटी लाइन जाती है।

मार्च १९७० में मैं अपने पुराने गुरुकुल महाविद्यालय के सहपाठी श्री रामचन्द्र वैद्यराज, गाँव पोस्ट परब, जिला सूरत निवासी। के पास पहुँच गया। वैद्य जी और उनके मित्र मोती भाई पटेल, मोर थाना निवासी के द्वारा व्यासाश्रम [चाणोद, कर्णाली] के ट्रस्टी सूरत निवासी देवाई श्री खण्डू भाई कुंवर जी से परिचय पत्र ले गुजरात की यात्रा

करने के बाद मोटरों और रेल की यात्रा द्वारा नर्बदा नदी को नाव से पार करके ३ मार्च को चाणोद पहुँच गये। श्री वेणी भाई नवनिर्वाचित मन्त्री, बम्बई, बड़ौदा आर्य प्रतिनिधि सभा के परिचय पत्र के साथ आश्रम के स्वामी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य के पास जा ठहरे। उन्होंने हमें वह सब स्थान दिखाये जहां २ चाणोद कर्णाली में ऋषि दयानन्द ने सन्न्यासी होने के साथ वास भी किया था। कुवेर भंडारी भी देखा जिसमें स्वामी जी भोजन लेते थे। वह छोटी सी कुटिया भी देखी जिसमें स्वामी जी साधना करते थे। उसके अन्दर एक गुफा भी है जिसमें स्वामी जी अभ्यासार्थ बैठते थे। नर्बदा के किनारे हंसारूढ़ आश्रम के पास गुफा और कुटिया भी देखी जहाँ स्वामी जी नर्वदा के किनारे आते थे। आज कल वह आश्रम बहुत सुन्दर बना हुआ है जहाँ भोजन व्यवस्था हो सकती है। अग्नि तीर्थ स्थान में ब्रह्मचारियों के रहने की जगह थी। आरम्भ में ऋषिवर उसी में रहे थे। आजकल तो ये सब स्थान उजाड़ पड़े हैं। रिट कमिश्नर के अधिकार में हैं। चाणोद कर्णाली में कुछ समय बहुत से मन्दिर और उनमें संस्कृत-पाठशालाएं थीं। शतशः सन्न्यासी और ब्रह्मचारी पढ़ते थे। उन दिनों यह स्थान दक्षिण की काशी माना जाता था। आज तो सब कुछ समाप्त हो गया है। नर्बदा की बाढ़ से बचे हुए मन्दिर धर्मशालाएं नये और पुराने आज भी तीर्थ यात्रियों के लिये विद्यमान हैं। तीर्थों में आज भी यह प्रसिद्ध तीर्थ है।

दूसरे दिन ४ मार्च को नर्बदा की धारा पर नीचे की ओर नौका से ५ मील की यात्रा कर व्यासाश्रम पहुँचे। ५ मार्च को शिवरात्रि थी। वहां पर व्यासेश्वर और व्यास जी के गुरु श्री सिद्धेश्वर सुरेश्वर महादेव, नर्बदा माता और लक्ष्मी नारायण के मन्दिर हैं। व्यासेश्वर में व्यास जी की पादुकाएं और शुकेश्वर में शुकदेव जी की पादुकाएं हैं। राधाकृष्ण की मूर्ति काले पत्थर की है। शुकेश्वर मन्दिर एक लाख की लागत से पुराने समय में बना था। उस पर चढ़ने के लिये १५० के लगभग सीढ़ियाँ होंगी यह मन्दिर नर्बदा के दूसरे किनारे पर है। नौका से जाते हैं। व्यासाश्रम नर्बदा की दो धाराओं के बीच में टापू के रूप में है। गर्मियों में एक धारा सूख जाती है। यहां पर गुरु दत्ता त्रेय का भी मन्दिर है। १५० वर्ष पहले कैलाश मन्दिर वासी ऋषि दयानन्द के दादागुरु योगेश्वरानन्द जी ने कैलाश मन्दिर का छः फुट के लगभग मोटा कोट (चार दिवारी) बनवाया था, जो चार वर्ष पहले नर्बदा की भयंकर बाढ़ में बह गया था।

दयानन्द के गुरु श्री योगानन्द जी उनके ही शिष्य थे। उन गुरुवर की पुण्य-तिथि भाद्रपदी षष्टी शुक्ला को होती है। वह इच्छा मृत्यु से देह त्यागने के लिये भाद्रपदी पंचमी शुक्ला को सिंह द्वार की गुफा में आसन लगा समाधि में बैठ गये थे। सबको सूचित कर दिया था। अब से ३२ वर्ष पूर्व महाराज जी की अस्थियाँ नर्बदा में प्रवाहित कर दी गईं। श्री महाराज योगानन्द जी ने ७५ वर्ष की आयु प्राप्त की। महाराज के भानजे पं० देवदत्त जी दवे ग्राम पोस्ट डाकोर में रहते हैं। ७६वर्ष की आयु है। वे बड़ौदा में भागवत सप्ताह में गये हुए थे दर्शन न हो सके।

व्यास मन्दिर का मुख पहले बरकाल ग्राम की ओर था। पीछे पलटा गया। यह सूचना व्यास क्षेत्र, बरकाल पो० चाणोद, बड़ौदा स्टेट वासी ज्योतिर्विद निर्भय राम कुवेर जीने सुनाई। इनकी आयु ७१ वर्ष थी।

इस आत्म चरित्र की खोज के लिये श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज ने १००) रुपया देते हुए कलकत्ता जाने की प्रेरणा की। आर्य वान प्रस्थ आश्रम ज्वालापुर से कलकत्ता आर्य समाज से पत्र व्यवहार किया। एक मास प्रतीक्षा की। उत्तर न मिलने पर श्री नारायण स्वामी आश्रम नैनीताल लौट गया। बहुत दिनों पीछे कलकत्ता से स्वीकृति मिली, और मैं २५ मई १९७१ को कलकत्ता पहुँच गया। ३० जून तक ठहरा। आर्य समाज कलकत्ता ने पूरा सहयोग दिया। अपने नियम के विरुद्ध ५ दिन अधिक ठहरने की स्वीकृति भी प्रदान की। पं० दीनबन्धु जी शास्त्री नित्यप्रति आकर बंगला हस्त लेखों और प्रकाशित हिन्दी अनुवाद से मिलान करवाते रहे। वर्षा अत्यधिक हो जाने के कारण, और बीच में आखों के रोग के कारण भी बीच २ में न आ अके। इसलिये कुछ कार्य अधूरा भी रह गया। दीन बन्धु जी का पुस्तकालय बहुत विशाल है, बहुत ही स्वाध्याय शील, सरल प्रकृति देवता स्वरूप विद्वान् हैं। यह सब उन्होंने ऋषि भक्ति से प्रेरित होकर ही किया है। ४० वर्ष जवानी के "दयानन्द का पगला" बन कर और कहला कर भी जीवनी की खोज की है। तीनों ब्राह्म समाजों में जाकर आचार्य पद स्वीकार कर वेद कथा कर अपना प्रभाव उत्पन्न किया। और बीसियों घरों से जीवन के पन्ने एकत्र किये। बहुत से तथ्य मुझे भी बताए और दिखाये। बहुत सी पोषक सामग्री भी प्रदान की। तीन वर्ष तक सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधि भी रहे। कलकत्ते का प्रत्येक आर्य

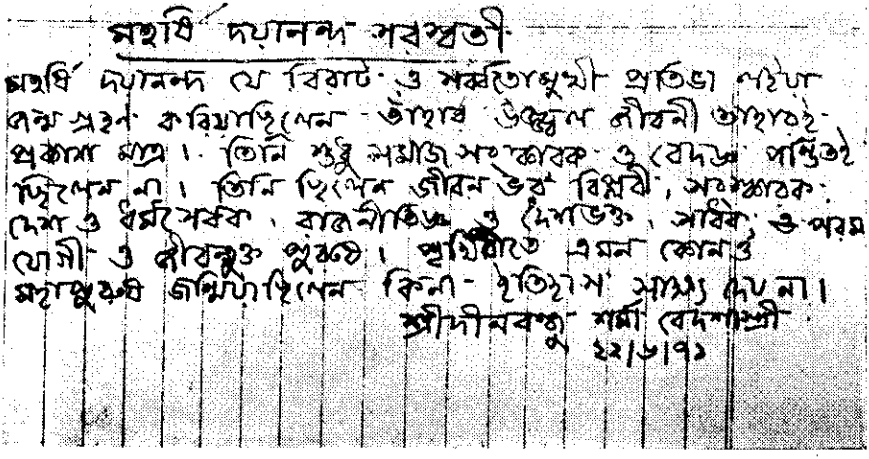
মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী

মহর্ষি দয়ানন্দ যে বিরাট ও সর্বতোমুখী প্রতিভা লইয়া
জন্ম গ্রহণ করিয়াছিলেন তাঁহার উজ্জ্বল জীবনী তাহারই
প্রকাশ মাত্র। তিনি শুধু সমাজ সংস্কারক ও বৈদিক পণ্ডিত
ছিলেন না। তিনি ছিলেন জীবন ভর বিপ্লবী, সংস্কারক,
দেশ ও ধর্ম সেবক, রাজনীতিজ্ঞ ও দেশভক্ত, সাধক ও পরম
যোগী ও জীবন্মুক্ত পুরুষ। পৃথিবীতে এমন কোন ও
মহাপুরুষ জন্মিয়াছিলেন কিনা ইতিহাস সাক্ষ্য দেয় না।
শ্রীদীনবন্ধু শর্মা বেদশাস্ত্রী
২২/৬/৭১

श्री पं० दीन बन्धु जी का हस्त-लेख
बगला-हिन्दी में

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती यो विराट् ओ सतोमुखी प्रतिभालय्या, जन्म ग्रहण करिया छीलेन। ताहार उज्ज्वल जीवनी ताहारी प्रकाश मात्र। तीनी शुधु समाज संस्कारक औ वैदिक पण्डित छीलेन न। तेनी छीलन जीवन भर विप्लवी संस्कारक, देश औ धर्म-सेवक, राजनीतिज्ञ, ओ देशभक्त, साधक, परम योगी, औ जीवन्मुक्त पुरुष; पृथिवी ते एमन कोनो महापुरुष जन्मिया छीलेन इ न। इतिहास साक्ष्य दैन।

ह० : श्री दीन बन्धु शास्त्री

२२-६-७१

हिन्दी में अनुवाद :

महर्षि दयानन्द ने जिस विराट् और सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर जन्म ग्रहण किया था, उनकी उज्ज्वल जीवनी उसी का प्रकाशमात्र है। वे जीवन भर क्रान्ति-कारी, सुधारक, देश और धर्म के सेवक, राजनीतिज्ञ, देशभक्त, साधक, परम योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। पृथ्वी में ऐसे किसी महापुरुष ने जन्म लिया कि नहीं, इतिहास इसकी साक्षी नहीं देता है।

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मद्‌यानन्द सरस्वतीरर महोदयेर आत्म-चरित्र

(१)

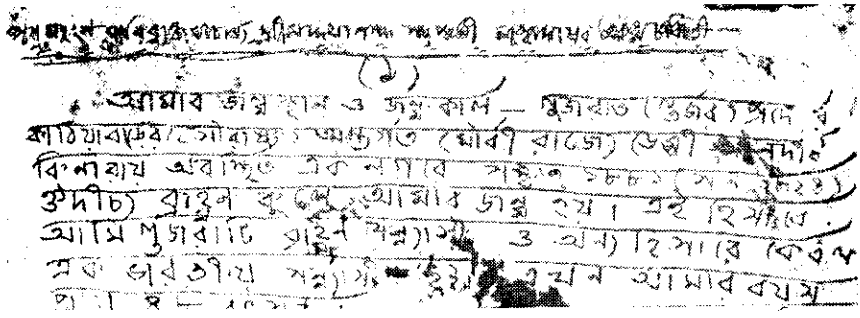

आमार जन्म-स्थान व जन्म-काल : गुजरात (गुर्जर) प्रदेशे काठियावाडेर (सौराष्ट्र) अन्तर्गत मौर्वी राज्ये डेमी नदीर किनाराय अवस्थित एक नगरे सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) औदीच्य ब्राह्मण कुले आमार जन्म हई । एई हिसावे आमी गुजराती ब्राह्मण सन्यासी आ अन्य हिसावे केवल एक भारतीय सन्यासी हई । ए खोन आमार वयस प्रायः ४८ वत्सर हुई ।

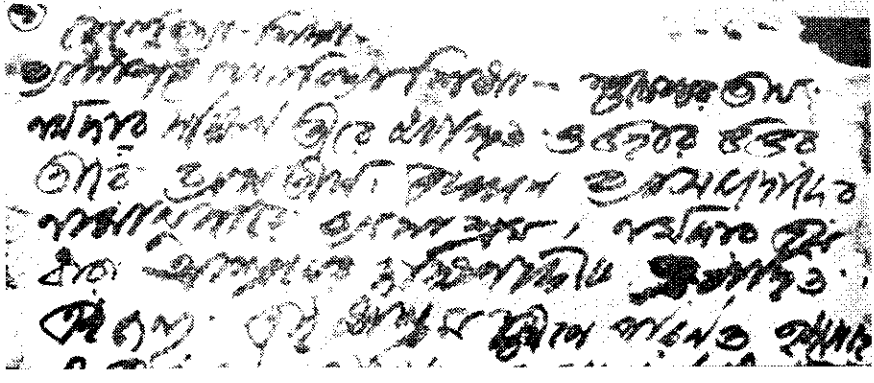

योग विद्या शिक्षा

व्यास आश्रमे योग विद्या शिक्षा : शुकेश्वर तीर्थ नर्मदार दक्षिण तीरे अवस्थित, ओ ओहार उत्तर तीरे व्यास तीर्थ । ए खानि व्यास महोदयेर नामानुसारे व्यास आश्रम । नरमदार एक धारा आश्रमे दक्षिण दिके प्रवाहित । एई जन्य एई आश्रम दीपे परिणत होइया छे ।

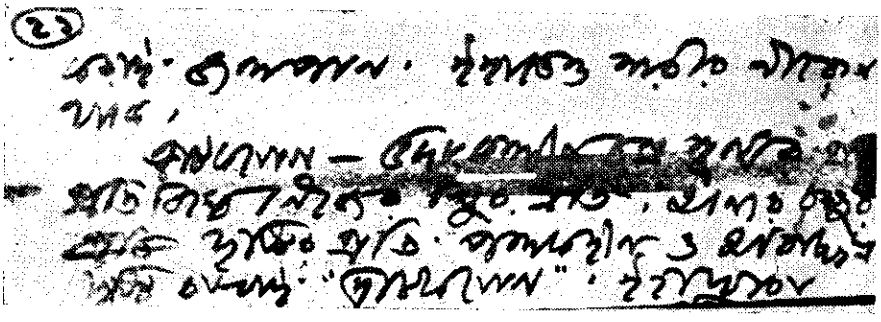

कराई जलपान। इहातेओ शरीर नीरोग थाके। त्राटक योग-उदयकालीन चन्द्र सूर्य प्रतिबिम्ब निजेर चक्षुर प्रति अन्य चक्षुर दृष्टीर प्रति पलक हीन ओ अविछिन्न दृष्टि राखाई त्राटक योग, इह द्वारा।

◆

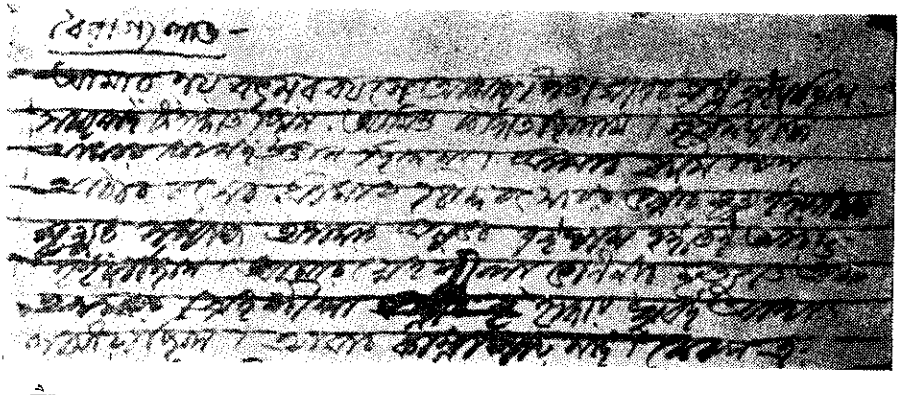

वैराग्य लाभ :

आमार नार्य वत्सर वयसे आमेर पितामहेर मृत्युर होइया छीलो। शक लेई कान्दी ते छीलो आमी, कान्दी ते छालां। मृत्युर सम्बन्धे आमार कोई ज्ञान छीलो न। आमार वयस इयारवन अठारह वर्ष। आमार चौदह वर्षेर भग-नीर मृत्युर होइया छीलन। मृत्युर सम्बन्धे आमार अनुभव एइरवान होइते इ आरम्भ होइआ छील। आमार स्नेहोशीला मगिनीर मृत्यु ते हृदये खूब आघात लागिया छील। आमार कान्ता पाइ नाई। केवल एह।

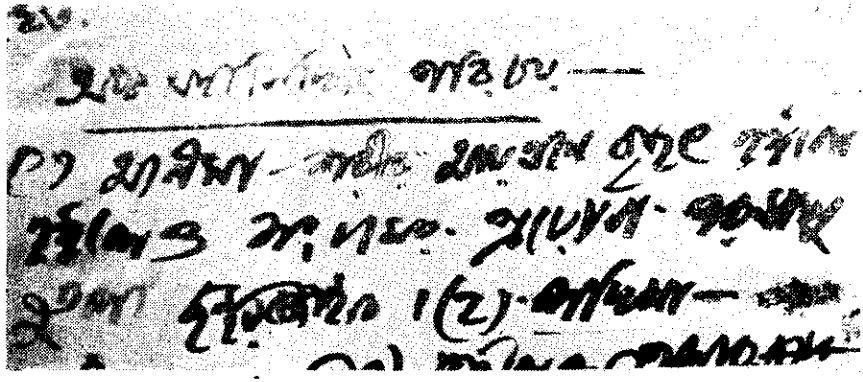

अष्ट सिद्धिर परिचय

१. अनिमा-शरीर आ यतने वृहत होइबे न।
हइले ओ संयमेर प्रयोगे परमाणु तुल्य हइबे।
२. लघिमा

◆

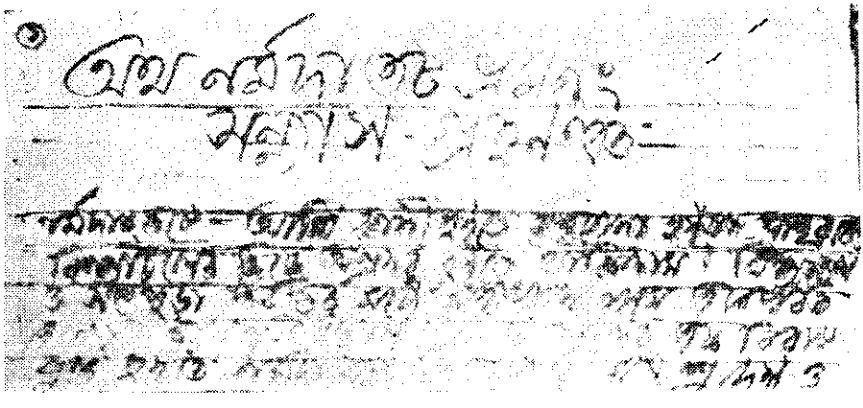

अथ नर्मदा तट भ्रमण, सन्न्यास ग्रहणंच

नर्मदा तटे आमि काशी हई ते रवाना हइया। पद व्रजे विन्ध्या चलेर दिके अग्रसर हइते थाकिलाम। विन्ध्याचल औ सतपुरा पर्वतेर मध्ये महाकाल नामे पर्वते आछे। ताहार शृंगेर एक विराट् कुण्ड हइते नर्मदा बहिर्गत होइछे।

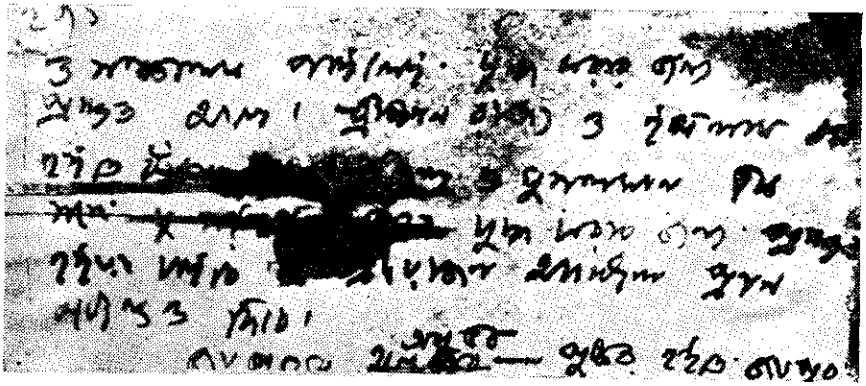

आ संचालक पाइले युद्ध करार जन्य सकले प्रस्तुता आछे। खिस्टान राज्य आ इस्लाम राज्य हइते हिन्दु मुसलमान एक संगे युद्ध करार जन्ये प्रस्तुत हइ आ जाइवे। प्रयोजन आशिले प्राण परियन्त दीवे।

जयपुरेर अनुभव, पुष्कर हइते जयपुर

◆

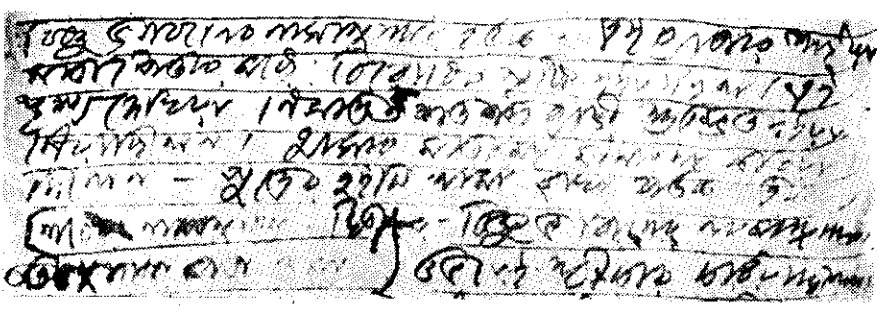

विष्णु भगवानेर नामानुसारे कर्षण जी एई व्यापार लइया माता पितार मध्ये विरोधेर श्रृष्टि हइया छील। एइ दृश्य देखिया निमन्त्रित शत-शत व्यक्ति स्तम्भित हइया गइया छीलेन। आमार माता मह मीमांसा कइया दीलेन। पुत्रेर दुइ नीति नाम राखा हौक्। एक शिवेर नामानुसारे। द्वितीय विष्णु भगवानेर नामानुसारे। तदनुसारे बाबा ओ मां उभय स्वीकार करिया छीलेन।

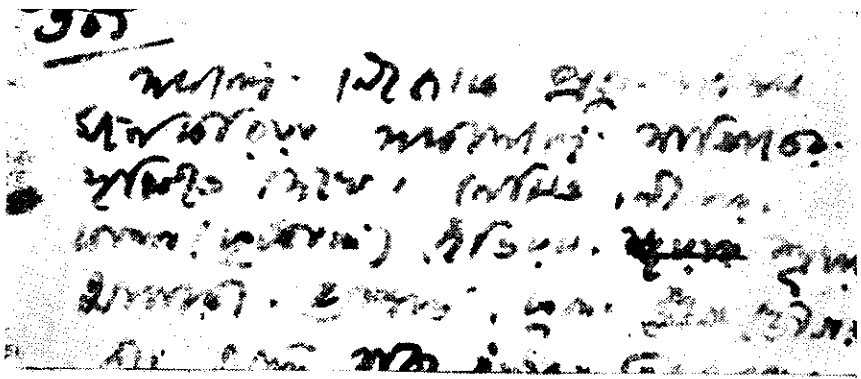

सकले निजे के प्रभु शासक मनि करिया सकल के ई शासिकेर दृष्टि ते राखे ।
नेटिव निगार काला कृष्णांग) इडियट, सूअर, अनाड़ी, स्पष्ट ई, फुल, डाग ।

सदस्य और अधिकारी इनको मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। इन्होंने इस अज्ञात जीवनी में एक भी अक्षर अपनी ओर से नहीं मिलाया है। यह मैं मिलान कर देख चुका हूं। इस बत को उन दिनों कलकत्त में पधारे श्री ओउम् प्रकाश जी त्यागी महामन्त्री सार्वदेशिक सभा ने भी सब लेखों को देख कर स्वीकार किया। यह सम्मति सार्वदेशिक में छप भी चुकी है।

पण्डित दीन बन्धु जी ने ऋषि प्रयुक्त संस्कृत शब्दों को बंगला समझ कर उनका अनुवाद उर्दू में कर दिया था। मैंने ऋषि कथित उन्हीं संस्कृत शब्दों को जीवनी में अंकित कर दिया है। यत्र तत्र अनुवाद की सारगर्भित त्रुटियों का संशोधन कर हस्त लेखानुसार पाठ करा दिया। पाण्डु लिपि के पृष्ठों की संख्या भी दी गई है, जो ३७४ है। बंगला भाषा भी हिंदी में टिप्पणी में दे दी है।

शंकाओं के निवारणार्थ अनेक यात्रा ग्रन्थ, भूगोल और ऐतिहासिक ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ा।

इस सारी छान बीन से निष्कर्ष यह निकलता है कि.—

१.—अज्ञात जीवनी सारी की सारी पुराने बंगला लेखकों की लिखी हैं। बहुत पुरानी है। कागजा भी पुराना है। शीर्ण-जीर्ण पृष्ठ भी हैं। दीमक के खाये भी हैं।

२. ३७४ पृष्ठ तक के हस्तलेखों का मुद्रित अंकों से संतुलन किया। अगले लेखों का उस समय मिलान न हो सका। 'सार्वदेशिक' के ६१वें लेख तक का मिलान कर सका।

ऋषिकेश से मानसरोवर शीर्षक वाले ६२ वें अंक को कोई महानुभाव ले गये थे। उपद्रवों के कारण वे न आ सके।

३. ऋषिवर के कलकत्ता-वास के समय एक बंगला भाषा की छोटी सी पुस्तक ऋषि को भेंट की गई थी। वह ऋषि के आगमन से पूर्व की प्रकाशित है। उसका कागज इन हस्तलेखों से भी नया लगता है। वह मेरे पास है।

४. कुछ पन्ने स्वामी जी के समक्ष लिखे लेखों के पश्चात् दूसरी बार लिखे गए प्रतीत होते हैं। कुछ खराब होने पर पुनः लिखे गए प्रतीत होते हैं, सभी बहुत पहले के हैं। एक-एक पृष्ट पर आरम्भ और मध्य में अलग-अलगपृष्ठांक हैं।

५. पं० दीनबन्धु जी की कोई कल्पना कहीं पर नहीं है।

६. दो स्थलों की दो २ प्रतियाँ भी हैं। लेख मिलता है।

७. हस्त लेख १०-१२ प्रकार से अधिक हैं। सब भिन्न-२ हैं।

लेखों के फोटो भी मैंने लिए हैं। पं० दीनबन्धु जी के लेख का भी फोटो लिया है। सब भिन्न हैं लेखाक्षर नहीं मिलते। लेख चित्रों में देखें में देखें।

८. कलकत्ता आर्यसमाज के सब ही व्यक्ति पं० दीन बन्धु जी की सच्चाई के कारण उनके प्रति सम्मान भाव रखते हैं।

९. श्री पं० उमकाँत जी तथा पं० सदाशिव जी आदि सब ही सार-हीन समालोचना और पं० दीनबन्धु जी का लेखों में अपमान करने से दुःखी हैं।

१०. पूना प्रवचन और थियासोफिस्ट जीवनी से इस जीवनी का कोई भेद नहीं है। अपितु अज्ञात जीवनी में उनमें आये स्थानों और घट-नाओं का विशद उल्लेख है। पृष्ठ—२७३ से ३२७ तक परिशष्ट ८ देखें

११. कोई भी स्थान अज्ञात जीवनी में ऐसा नहीं है, जिसका पुरा पता-ठिकाना मालूम न कर लिया गया हो। गुफा, नदो, नाले, घाट, मन्दिर, तीर्थ, वन, पर्वत, तालाब सब की ही पूरी जानकारी लिखित मौजूद है। परिशिष्ट १ से ७ में देखें पृष्ठ २५३ से २७१

१२. बड़ौदा से बनारस जाना, थियासोफिस्ट, पं० लेखराम, देवेन्द्र बाबू ने अपने २ ग्रन्थों में स्वीकार किया है। देखें—१२६ से१२८। बनारस के अध्ययन काल केगुरुओं के नाम तकभी देवेन्द्रबाबू के बंगला में प्रकाशित दूसरे संस्करण में मिलते हैं इसकी एक प्रति मुझे पं०दीनबन्धुजी से प्राप्त हो गई है अन्यत्र अप्राप्य है इसे कलकत्ता वासकाल में गोविन्दराम हासानन्द ने छापा था। जिसे कलकत्ता आर्यसमाज ने छापने से इंकार कर दिया था।

१३. ऋषि के पूना प्रवचन के १०वें व्याख्यान और १६वें व्याख्यान में उल्लिखित अलकापुरी,देहविघटन,काश्मीर,कैलाश यात्रापृ. ९७ पृ. १२९ १३२ के उल्लेख की अज्ञात जीवनी पुष्टि करती है।

१४. अलखनन्दा स्रोत की यात्रा में अब तक अज्ञात 'मग्नम्' बद्री-नाथ से १३४ मील पर कैलाश यात्रा के मध्य का पड़ाव है। देखो--पृ.१३० १३२ कैलाश के १३ यात्रा-मार्गों में से यही सबसे कठिन मार्ग है,इस मार्ग से यात्रा का वर्णन केवल एक अंग्रेज यात्री का ही और मिलता है यह सब विवरण १३वर्ष तक कैलाश मानसरोवर पर रहने वाले,स्वा प्रणवानन्द जी की'कैलाश मानसरोवर यात्रा' में मिलता है, जिसकी भूमिका पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखी थी। ऋषि के हिमालय के मार्गो एवं स्थानों की यात्रा वर्णन की पुष्टि गौरीशंकर शिखरारोही श्री रामराहुल जी ने की है। इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है।

१५. ऋषि की तिब्बत यात्रा का उल्लेख भी 'तिब्बत में तीन वर्ष' नामक पुस्तक में मिलता है जो (पुस्तक) जापानी यात्री 'श्री ईकाई का वागुची रचित है। देखो—१३८-१४०

१६. सन् ५७ में ऋषि दयानन्द ने केवल साधु-संघटन ही नहीं किया था अपितु अश्वारोही बनकर स्वयं भाग भी लिया था। ब्रह्मावती बिठूर के विनाश की घटना का प्रत्यक्ष अवलोकन न किया होता तो 'सत्यार्थ प्रकाश' में भी उल्लेख न होता। देखो—१०३-१४०

१७. नाना साहब, उनकी मुंह बोली बहिन लक्ष्मीबाई, माता गंगा बाई, छोटे भाई बाला साहब, मंत्री अजीमुल्लाखाँ और उनके लिपिक तांत्याटोपे, नाना के साथी वीर विक्रमसिंह, यह सारा परिवार कानपुर से कुम्भ मेले पर हरद्वार गया। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं। क्योंकि नाना साहब ही अंग्रेजी पत्र के लेखानुसार दयानन्द के नाम से टंकारा मे ही छुपकर रहे थे। आर्यसमाज के मन्त्री के पत्रानुसार नाना साहब की टंकारा में छतरी बनी है। अपनी मृत्यु पर नाना साहब ने सोने और अशर फियों से भरी छड़ी अपने अन्तिम संस्कार के लिए दी थी। नाना के हाथ से बने चित्र भी वहाँ रखे हैं। नाना साहब यदि दयानन्द के शिष्य न होते तो जान को जोखम में डाल गुरुभूमि की धूलि में वास क्यों स्वीकार करते। देखो—११८-१२२

१८. चपातीं, कमल की प्रथा भी अत्यन्त प्राचीन है। इतिहासकार भी इसके उद्गम का पता न लगा सके। इनकी प्रयोग विधि का पूरा २ उल्लेख The Oxford History of India, By Vincent A Smith C.I.6 के ७१४ पृष्ठ पर है।

बाबू रामगोपाल घोष ने भी G.D. ६१२ P. के पते से उल्लेख किया है। पी- ३५-६६ में भी इसका उल्लेख है। ७२० पृष्ठ परगंगाबाई का लक्ष्मीबाई के साथ सम्बन्ध बताया है। '१८५७ का भारतीय स्वतन्त्र्य संग्राम' नामक जगत् प्रसिद्ध इतिहास में वीर सावरकर ने भी इन सब घटनाओं का वर्णन विस्तार से किया है। अन्य भी अनेक प्रमाण हैं। १२२-१२५

१९ बाल्य-जीवन, वैराग्य, योगाभ्यास आदि के ३८ लेख सबने ही निरापद माने हैं। खोज से सारी अज्ञात जीवनी ही निरापद हैं।

अज्ञात जीवनी की १९२५ से प्रतीक्षा

—श्री पं० दीन बन्धुजी शास्त्री बी.ए. आचार्य आर्य समाज, कलकत्ता अज्ञात जीवनी के पुराने हस्तलेखों की खोज में ४५ वर्ष से लगे रहे।

—१९२५ में मथुरा में श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से विचार-विमर्श हुआ। सब ही ने उत्साह प्रकट किया।

—१९२६ को टंकारा में श्रीमद् दयानन्द शताब्दी में आर्य नेताओं को अज्ञात जीवनी की क्रमिक उपलब्धि की सूचना दी गयी सबही से अपूर्व उत्साह मिला।

—सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद् दयानन्द अर्धशताब्दी उत्सव में खुले पण्डाल में अज्ञात जीवनी के अनुसन्धान के बारे में भाषण दिया। 'आर्य समाज के इतिहास' में पं इन्द्रजी ने इसका उल्लेख किया।

—श्री हेमचंद्र चक्रवर्त्ती की 'दिन पंजी' से 'महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनं दिनकर्म सूची' मिली। आर्य समाज कलकत्ता ने 'दयानंद प्रसंग" नाम से प्रकाशित किया।

—स्वामी स्वतंत्रदानन्द जी ने उसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित किया। पं इंद्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्य समाज का इतिहास' में इस पर हर्ष प्रकट किया।

—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, पं० घासीरामजी एडवोकेट प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत, दीवान हर विलासजी शारदा, महाशय रघुनंदन लालजी, पं० मिहिरचंदजी धीमान ने इस अज्ञात जीवनी के उद्धार में बहुत उत्साह दिया।

—इस अज्ञात जीवनी के प्रकाशित होने पर आर्य जगत् में अपार हर्ष है। ऋषि की जोखम भरी यात्राओं और योग का अपूर्व दिग्दर्शन या ऋषि भक्त तथा अन्य धन्य हो गये हैं। हृदय से पं० दीनबंधु के इस ४० वर्ष के अध्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यदि सूर्य का प्रकाश उल्लूक को नहीं भाता तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

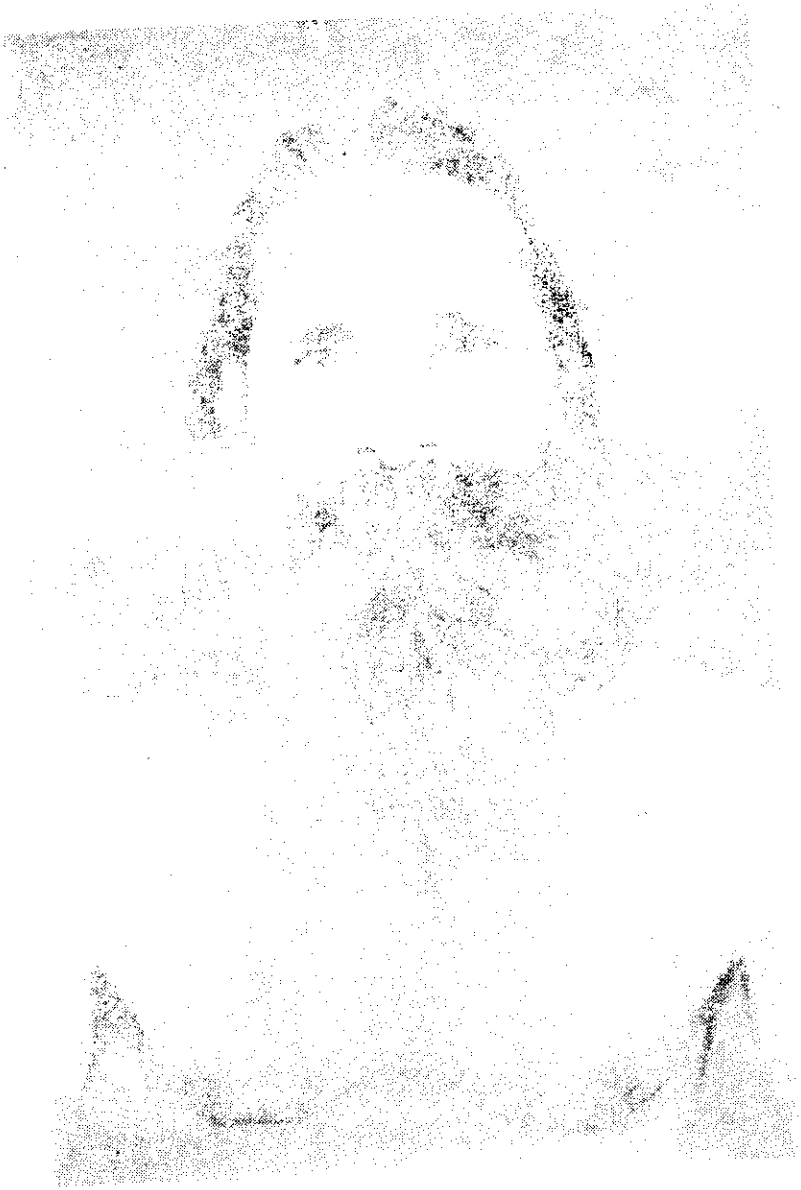

अध्यक्ष : श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती 'योगी' महामहिम,
पातञ्जल योग-साधना संघ, श्री नारायण स्वामी आश्रम, नैनीताल ।

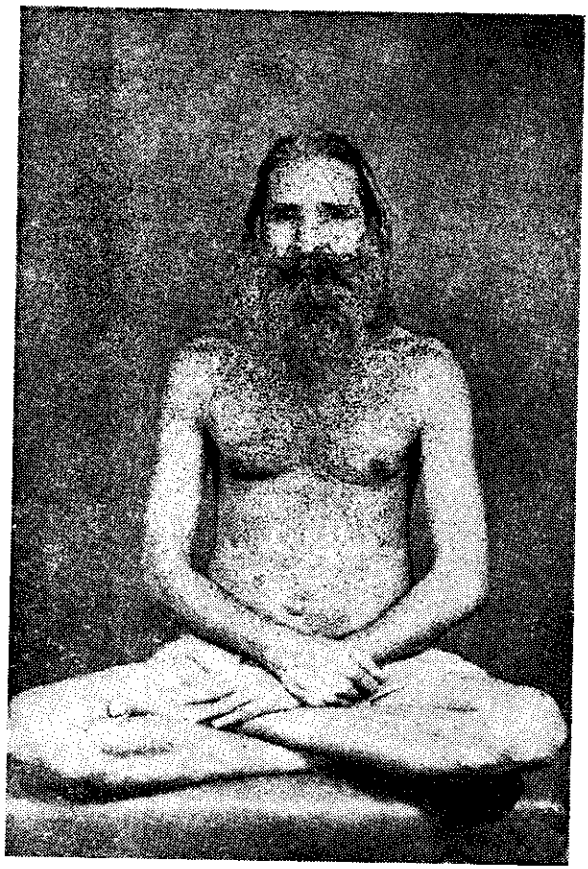

योग गवेषक, पोषक, ऋषि यात्रा-यात्री
स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी

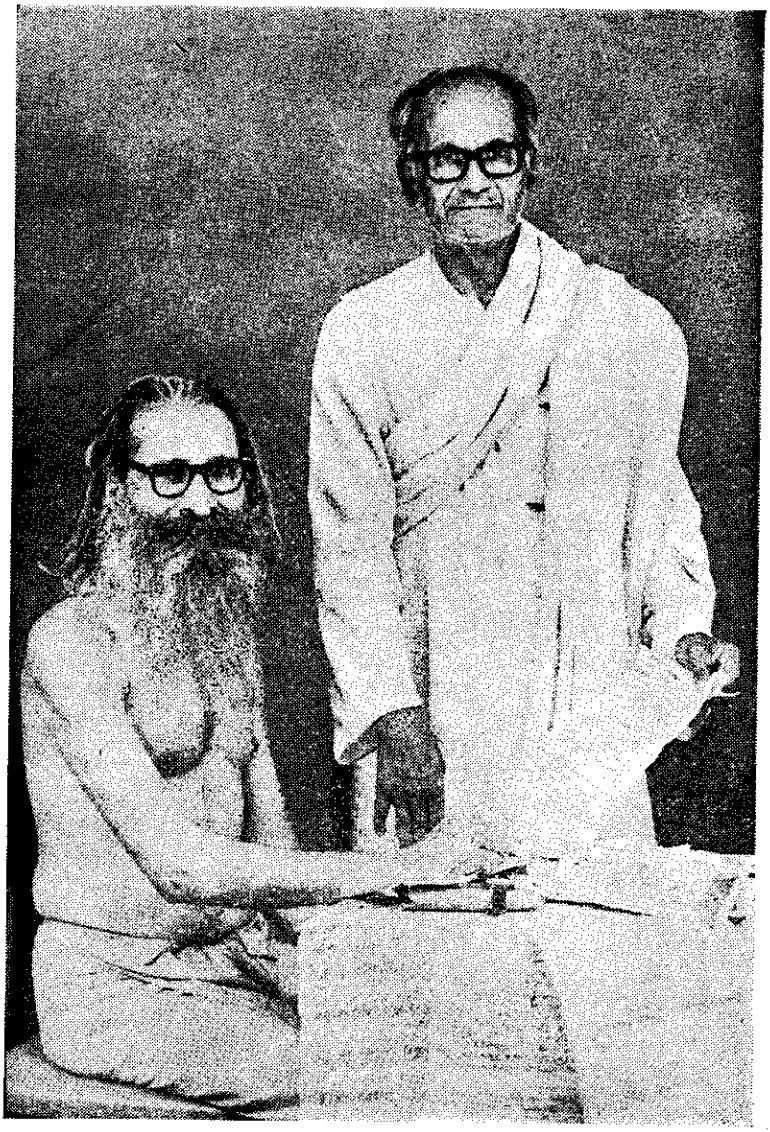

श्री पं० दीन बन्धु जी तथा योग गवेषक, योगी तथा
बंगला पाण्डु लिपि के १८७३ के जीर्ण पत्र

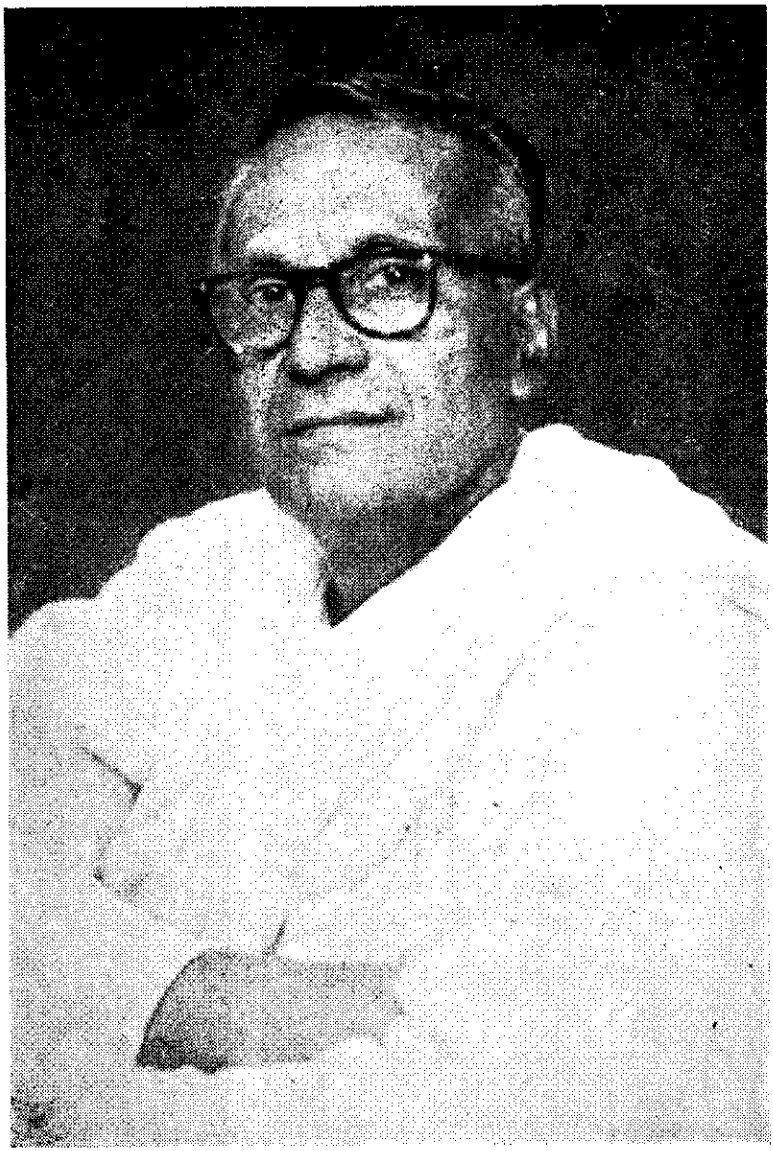

श्री पं० दीन बन्धु जी वेद शास्त्री बी० ए०, वेदाचार्य-
शान्तिनिकेतन, कलकत्ता।

पृष्ठ भूमि

सन् १९२३ में आर्यसमाज कलकत्ता के दीपावली उत्सव के सभापति पद से भाषण देते हुए श्री विपिनचन्द्र पाल (बंग-भंग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन के नेता, सुप्रसिद्ध राजनीतिक वक्ता और ब्राह्म-समाज के विशिष्ट पुरुष) ने घोषणा की थी—"महर्षि दयानन्द सरस्वती वर्तमान युग के अनन्य श्रेष्ठ महापुरुष थे। बहुत ही खेद की बात है कि उनकी अज्ञात जीवनी का उद्धार आज तक भी हुआ नहीं। यह उत्तर-दायित्व विशेष रूप से आर्यसमाज का है इसके लिये भगीरथ प्रयत्न होना चाहिए।"

श्रीरामानन्द चटर्जी एम० ए० ("Modern Review"), एवं "प्रवासी" पत्र के सम्पादक और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य) ने कहा था—"महर्षि दयानन्द बंगाल में आकर पूरे चार महीने (१६ दिसम्बर १८७२ से १६ अप्रैल १८७३ तक) रहे। काशी-शास्त्रार्थ (१८६९) के **विजयी वीर** महर्षि दयानन्द के दर्शन के लिये बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, धर्म संस्कारक, साहित्यिक, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिन्तनशील मनीषी लोग उनके रहने के स्थान महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर के वराहनगरस्थ नाईबान नामक प्रमोद कानन में प्रतिदिन अधिक संख्या में आते जाते थे। विशिष्ट पुरुषों से उनका विचारविनिमय, वार्ता-लाप, आलोचना और शंका-समाधान भी होता था। बहुतों के साथ उनका प्रेम-प्रीति और सौहार्द भी पैदा हो गया था। उनकी मुख निःसृत और संस्कृत भाषा में कथित वाणियों को लिपि-बद्ध करने के लिये **महर्षि देवेन्द्र-नाथ ठाकुर**, पं० **ईश्वरचन्द्रविद्यासागर** और **ब्रह्मानन्द श्री केशवचन्द्रसेन** ने कुछ एक विद्वान् लेखकों की नियुक्ति की थी। वे सब संस्कृत में लिखित विवरण आज कहाँ ? "दयानन्द-चरित" के लेखक श्री देवेन्द्रनाथ

मुखर्जी को इसका पता नहीं मिला था। आज अगर वह अमूल्य सम्पद् मिल जाय तो धर्म-जगत् के लिये बहुत ही उपकार होगा। आर्य-समाज कलकत्ता का इसके उद्धार के लिये पूर्ण प्रयत्न परम कर्त्तव्य है।"

पं० श्री रसिक मोहन विद्याभूषण (वैष्णव दार्शनिक और शताधिक वर्ष-जीवी पुरुष) ने कहा—"उस समय तक महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के करीब ५० वर्षों की प्रधान-प्रधान घटनाओं को सुनाया था,केवल पिता का नाम और जन्म-स्थान का परिचय नहीं बताया। शर्त भी थी कि उनकी मृत्यु से पूर्व यह विवरण मुद्रित न होने पावे। सम्भवतः यह विवरण ब्राह्म समाज के नेताओं के पास ही रह गये और उनका ध्यान ही नहीं रहा।"

पं० श्यामलालजी गोस्वामी (बंगाल के सुप्रसिद्ध धर्मवक्ता) ने कहा —"उस समय से १० वर्ष बाद महर्षि दयानन्द की मृत्यु हुई थी। इन दस वर्षों के अन्दर ब्राह्मसमाजी आदि,नव विधान और साधारण इनतीन नामों में विभक्त होकर परस्पर प्रतियोगिता करते रहे और महर्षि दयानन्द जब राजकोट, बम्बई, पूना, लाहौर,अहमदाबाद आदि स्थानों में आर्यसमाज की स्थापना करने लगे तब वहाँ के प्रार्थना-समाजों (ब्राह्म समाज) के साथ आर्यसमाजों की प्रतिद्वन्द्विता शुरु हो गई थी। इस स्थिति में महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) में हो गयो। उस लिपिबद्ध विवरण के प्रति ब्राह्मसमाज स्वाभाविक रूप से ही उदासीन हो गया था। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी (बंगदर्शन पत्र के सम्पादक), श्रीनगेन्द्रनाथ चटर्जी (महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी" के लेखक) और श्री देवेन्द्र नाथ मुखर्जी ("दयानन्द चरित" के लेखक) को भी उस लिखित विवरण का पता सहीं मिला था। आर्य समाज और ब्राह्म समाज के अन्दर वैमनस्य भी इसके लिये एक कारण था। सन् १८७३ से आज १९२३ है– यह तो ५० वर्ष की बातें हैं। महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) के बाद भी आज ४० वर्ष चले गये। वह लिखित विवरण मिल जाये तो अच्छा ही है। लेकिन भगवान् जानते हैं कैसे इसका उद्धार होगा।"

पं० शंकरनाथ (भवानीपुर कलकत्ता ब्राह्मसमाज के सभापति और कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति पं० शम्भुनाथ के सुपुत्र और आर्यसमाज कलकत्ता के सभापति) ने कहा—"आजकल ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज के अन्दर कोई वैमनस्य नहीं है। बहुत पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने आदि ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज को एकत्र करने के लिये कोशिश भी की थी। श्री बलयेन्द्रनाथ ठाकुर को इन्होंने इस उद्देश्य से लाहौर आर्य-

समाज तक भेजा था। उनके प्रबल आग्रह से हमने आर्यसमाज के पं० अच्युत मिश्र को बोलपुर शान्ति निकेतन में दैनिक होम करने के लिए भेजा था। जब तक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे तब तक वहाँ दैनिक होम चालू रहा। पंजाब के विशिष्ट आर्यसमाजी श्रीरामभजदत्त चौधरी के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ की दौहित्री श्रीमती सरलादेवी का विवाह हुआ था और उस विवाह का अनुष्ठान मेरे घर पर ही हुआ था। आजकल आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के अन्दर सामाजिक और व्यावहारिक वैमनस्य कुछ भी नहीं है। दोनों समाजों के विशिष्ट सदस्य लोग परस्पर दोनों के वार्षिक उत्सवों में शामिल होते हैं। महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के उपादान जिनके हाथों में हों, वे अवश्य देने की कृपा करें।"

वर्तमान लेखक ने कहा—"दोनों समाजों में वेद की मान्यता के सम्बन्ध में वैषम्य अवश्य है। ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहनराय वेद को अभ्रान्त और अपौरुषेय नहीं मानते थे। आज भी आर्यसमाज के उत्सवकालीन यज्ञों में आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्ततीर्थ, नवविधान ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री द्विजदास दत्त (अध्यक्ष शिवपुर इन्जीनियरिंग कालेज और अलीपुर षड़यन्त्र मामले के आसामी श्री उल्लासकर दत्त के पिता) और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील सम्मिलित होते हैं। मैं भी ब्राह्मसमाज के आमन्त्रणानुसार चितपुर रोड के आदि ब्राह्मसमाज की वेहाला की और उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी से शास्त्र-पाठ करता हूं। अगर ब्राह्मसमाज वेद को अपौरुषेय और अभ्रांत मान लेता तो महर्षि दयानंद कभी आर्यसमाज नाम से कोई नयी धर्म संस्था स्थापित नहीं करते। जो कुछ हो, अगर महर्षि की कथित आत्म-जीवनी, वार्तालाप, शंका समाधान और आलोचना-प्रसंगों की पांडुलिपि (Manu-script) विनष्ट न हो गई हो, तो उसका पुनरुद्धार हम लोग जरूर करेंगे।"

उस सभा में **थियोसोफिस्ट** (Theosophist) नेता श्री हीरेन्द्र नाथ दत्त वेदान्तरत्न एम. ए., पी. आर-एच, धर्मवक्ता पं० कुलदाप्रसाद मलिक आदि वक्ताओं ने अपने-अपने व्याख्यानों में हर्ष प्रकट किया था आर्यसमाज कलकत्ता के विशिष्ट पुरुष श्रीमान् सेठ दीपचन्द जी पोद्दार श्रीहरगोविन्द-गुप्त, सेठ श्री छाजुरामजी चौधरी, श्री तुलसीदास जी दत्त और श्री वलाई चन्द जी मलिक (प्रथम भारतीय डिप्टी मैजिस्ट्रेट श्री रसिककृष्ण मलिक के

पुत्र और 'Hindu Patriot" पत्र के सम्पादक श्रीकृष्णदास पाल के भानजे, आदि व्यक्तियों ने इस जीवनी-उद्धार-कार्य के लिये योजना भी बनाई थी। कृष्ण कुमार मित्र ("संजीवनी" पत्र के सम्पादक, बंग-भंग आन्दोलन के नेता और योगिराज अरविन्द घोष के मौसे) ने कहा—"महर्षि दयानंद की अज्ञात जीवनी का उद्धार हो जाय तो मैं अपने पत्र 'संजीवनी" में उसको धारावाहिक प्रकाशित करूँगा।"

वर्तमान लेखक तब ही (सन् १९२३) से आजतक (४५ वर्ष) से इस कार्य में लगा हुआ है। आशाजनक फल भी मिलने लगे। इसके दो वर्ष बाद (सन् १९२५) मथुरा की श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से इस अज्ञात जीवनी के बारे में विचार-विमर्श किया था। सब ही ने उत्साह प्रकट किया था। सन् १९२६ में टंकारा में श्री मद्दयानंद शताब्दी उत्सव में आये हुए आर्य नेताओं को इन अनुसंधानकार्यों की सम्भाव्य सफलता के बारेमें सूचना दी थी सब से अपूर्व प्रोत्साह न मिला था। सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद्दयानंद-निर्वाण अर्ध शताब्दी उत्सव के चौथे दिन खुले पंडाल में महर्षि की अज्ञात जीवनी के अनुसंधान कार्यों की सफलता के बारे में भाषण दिया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्यसमाज का इतिहास" नामक ग्रन्थ में उस व्याख्यान के बारे में उल्लेख किया है। महर्षि दयानंद के भक्त श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती (आदि ब्राह्म समाज के उपाचार्य) की दिन पंजी से महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनन्दिन कर्म-सूची 'दयानंदप्रसंग" नाम से मिल गयी थी। आर्य समाज कलकत्ता ने महाशय श्री रघुनन्दनलालजी की प्रेरणा पर उस कर्म-सूची को 'दयानंद प्रसंग" नाम से ही प्रकाशित किया था। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रतानंद जी महाराज ने "दयानंद-प्रसंग" का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने "आर्य समाज का इतिहास" ग्रन्थ में 'दयानंद-प्रसंग" का उल्लेख करके हर्ष प्रकट किया है। पं० भगवद्दत्तजी बी.ए. पं० घासीराम जी एडवोकेट और दीवान हरविलासजी शारदा से और कलकत्ता के महाशय रघुनंदन लाल जी और पं० मिहिरचंद जी धीमान से बहुत ही उत्साह मिला है।

आज तक भी इस विषय का अनुसंधान-कार्य बंद नहीं हुआ है। कलकत्ता से बाहर भी मुख्य-मुख्य जीवित जाग्रत ब्राह्मसमाजों के पुराने दफ्तर, कागजात, फाईलें, खाते, पत्र, नाम-पते जो मैंने महर्षि दयानंद के

बारे में खोज किये, उस समय के पुराने समाचार पत्रों की फाईलों से और जिस-जिस घर में महर्षि के उपदेश हुए थे, प्रवचन हुए थे या वार्तालाप हुए थे, वहाँ के अतिवृद्ध नर-नारियों के मुखों से ग्रहणीय बातें कुछ-न-कुछ श्रवण की गयी थीं। उन सब स्थानों के जनप्रवाद और कहानियाँ महर्षि के बारे में सुनीं। जहाँ-जहाँ महर्षि का आना-जाना होता था, वहाँ के लोग उनके ,भक्त, प्रशंसक, अनुयायी या विरोधी बन गये थे। सभी जगह उपादान-संग्रह के लिये गया था। कभी-कभी एक ही स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलने की आशा से घण्टों दिन मास घूमना पड़ा। कभी आशा सफल हुई, कभी विफल भी हुई। किसी-किसी सज्जन ने मुझको 'दयानन्द का दीवाना" "या "विकृत मस्तिष्क" का खिताब दिया था। मैंने प्रसन्नता से सब कुछ शिरोधार्य कर लिया।

महर्षि दयानन्द के बंगाल पधारने के समय से आज ९५वाँ वर्ष बीत रहा है। आज से २५वर्ष पहले भी बहुत वृद्ध पुरुष मिलते थे, जिन्होंने महर्षि के दर्शन किये थे। आज उन सबों का अभाव हो गया है। महर्षि के बारे में कागज के कुछ पुराने टुकड़े पुरानी बंग लिपि या संस्कृत लिपि में लिखे हुए ढूंढता था पर उनको भी बहुत आदमी पूर्वजों की धरोहर समझकर देना या दिखाना भी नहीं चाहते हैं। इस रूप में उपादान संग्रह करके महर्षि की अज्ञात जीवनी का प्रकाशित करना असम्भव ही मालूम पड़ा था। लेकिन भगवान् की कृपा से इस कार्य में आशा की किरण दीख पड़ी है। जो-जो पुरुष महर्षि की जीवनी की सारी बातें संस्कृत में कही हुई सुनकर लिखने के लिए नियुक्त हुए थे उन सबके बंगलिपि में बंग भाषा में लिखे हुए विवरण मिल गए हैं। भविष्य में और भी कुछ मिलने की आशा है। उन सब अंशों को क्रमानुसार रखकर लेखों का विन्यास किया गया है। जिन्होंने लिखा था उनके नाम, लिखने की तारीख और मेरे द्वारा उसकी प्रतिलिपि करने की तारीख और विवरण किस रूप से प्राप्त हुए हैं आदि उल्लेखनीय बातें दी जायेंगी।

अज्ञात जीवनी की सूचनाएँ

(१) पं० सत्यव्रत सामश्रमी के गृह से प्राप्त लिखित विवरण से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जीवन की बहुत-सी घटनाएँ मिली हैं जो कि बहुत ही विस्मयकर और चित्ताकर्षक हैं। नमूने के रूप में एक घटना दी जाती है। उसमें लिखा है कि दयाराम (दयानन्द) को बहुमूल्य आभूषणों

के साथ चोर चुराकर ले गये थे। दो दिन के बाद लड़के के मिल जाने से लड़के के शरीर के भार के समान सोने चान्दी से तुलादान और देवताओं केपूजा-पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य विद्याभूषण।

(२) ऐतिहासिक श्रीरमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० के गृह से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जीवन के वैराग्य की वर्णना प्राप्त हुई है। अपनी बहन और चाचा की मृत्यु से इहलोक और परलोक के बारे में शंका पैदा हो गई थी। उसमें उल्लेख है कि उनके घर में साधु-संन्यासी भिक्षुक आदि जो कोई आते थे उन सबसे दयाराम (दयानन्द) पूछते थे कि "मनुष्य-पशु-पक्षी मरकर कहाँ जाते हैं ?" मृत्यु के बाद की हालत जानने के लिए दयाराम कभी-कभी मरने के लिए भी तैयार हो जाते थे इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्रीनृत्यगोपाल चौधरी स्मृति रत्न।

(३) रिषिड़ा (हुगली)के पं० श्री सत्याचरण शास्त्री के गृह से जो विवरण मिला है उसमें है—दयाराम (दयानन्द) गृह से भागकर चार वर्ष तक योगी-साधु-संन्यासी-तपस्वियों की खोज में नाना स्थान घूमे थे। उस समय उनको देवता के सम्मुख बलिदान देने के लिए तांत्रिक साधु पकड़ कर ले गये थे। शिकारी लोगों के शिकार के लिए वहाँ आ जाने से उनके जीवन की रक्षा हो गई थी इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री नवीन चन्द्र अधिकारी व्याकरण-शास्त्री।

(४) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि दयाराम (दयानन्द) ने साधु-संन्यासी-तपस्वियों के अन्दर संगठन के लिए प्रयत्न किया था। देश की बुरी हालत मिटाने के लिए साधुओं को तैयार करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने सिपाही विद्रोह (Sepoy mutiny) आन्दोलन के साथ भी सम्पर्क स्थापित किया था मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचार-विमर्श करने के लिए आये थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री अवन्ती कांत चक्रवर्ती न्यायरत्न।

(५) श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रपौत्र श्री क्षेमेन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से विवरण मिलता है कि दयानन्द ने ५ वर्ष तक अवधूत के रूप में गंगोत्तरी से गंगासागर (बंगाल), गंगोत्तरी से

सेतुबंध रामेश्वर लंका और सेतुबंध रामेश्वर से देश के नाना स्थानों में भ्रमण किया। प्रधान-प्रधान सैन्यावासों में भी आया-जाया करते थे। बैराकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी आये थे। मंगल पांडे नामक सैनिक ने उनसे आशीर्वाद माँगा था। दयानन्द इसके बाद मथुरा में स्वामी विरजा नन्द के पास वेदादि ग्रन्थ पढ़ने के लिए आए थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री शिवचन्द्र राय विद्यार्णव।

(६) श्री बलाई चंद जी मल्लिक के गृह से जो विवरण मिला है उससे मालूम हो जाता है कि दयानन्द गुरु विरजानन्द से आशीर्वाद लेकर वेद प्रचारार्थ देश-भ्रमण से पहले साधना में निमग्न हुए थे। इस साधना की वर्णना इस विवरण में मिलती है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे— श्री नलिनी कान्त भट्टाचार्य विद्याविनोद।

(७) उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य अध्यापक श्री हृदय कृष्ण दे एम०ए० के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द वेद विद्यालय की स्थापना के लिए भारत के नाना स्थानों में भ्रमण कर रहे हैं इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री मधु सूदन आचार्य वाचस्पति।

(८) वेहाला आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री बेचाराम चटर्जी के वंशधर श्री हेमेन्द्र नाथ चटर्जी के गृह से जो विवरण मिला है उससे काशी शास्त्रार्थ का पूरा विवरण मिल जाता है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री प्रफुल्लचंद्र मुखर्जी तकलंकार।

(९) वराहनगरवासी आचार्य श्री शशिपद बनर्जी के दौहित्र, अध्यापक श्री देवव्रत चक्रवर्ती के गृह से जो विस्तृत विवरण मिला है उसके लेखक स्वयं श्री शशिपद वनर्जी थे। उसमें महर्षि दयानन्द के रहने के स्थान वराह नगर (कलकत्ता) के नाईवान प्रमोद कानन में कलकत्ता के प्रधान-प्रधान व्यक्ति और महर्षि दयानन्द के साथ जो कुछ वार्तालाप, शंका समाधान हुए थे, सब कुछ लिपिबद्ध हैं, इत्यादि।

(१०) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री सुरेशचंद्र सांख्य-वेदांत तीर्थ के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानंद और पं० ताराचरण तर्करत्न से हुगली में जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका पूरा विवरण है इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री सतीशचंद्र सान्याल विद्यालंकार। श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती, ऋषि के योग शिष्य से प्राप्त किया।

(११) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानन्द प्रदत्त योग-साधन विषयक उपदेश है। वह विवरण आदि ब्राह्मसमाज के उपाचार्य श्री हेमचंद्र चक्रवर्ती का लिखा हुआ है। हेमचंद्र महर्षि से योग विद्या सीखते थे। हेमचंद्र अधिकांश समय महर्षि के साथ-साथ ही रहते थे। यह आपने स्वयं लिखा है।

(१२) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सीतानाथ तत्व-भूषण के गृह से जो विवरण का अंश मिलता है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द प्रत्यक्ष रूप से कभी किसी स्त्री को उपदेश नहीं देते थे। एक दिन बराहनगर में आचार्य शशिपद बनर्जी के आश्रम में महर्षि दयानन्द के उपदेश का प्रबन्ध हुआ था। उपदेश शुरू होने के बाद उस स्थान पर अगल-बगल गाँवों की स्त्रियाँ धीरे-धीरे शताधिक हो गई थीं। महर्षि के उपदेश के बाद सब स्त्रियों ने एकत्र होकर उनको प्रणाम करना शुरु कर दिया। महर्षि ने मना किया किन्तु किसी ने भी नहीं सुना। महर्षि निरुपाय होकर आँखें बन्द करके प्रार्थना करने लगे। फिर स्त्रियों के शान्त होके बैठ जाने पर महर्षि ने स्त्रियों के लिए विशेष धर्म पर भाषण दिया था। इस उपदेश के लेखक थे—श्री धरणीधर मैत्र विद्यारत्न।

अब तक उपरिलिखित भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त महर्षि दयानन्द के मुख से निःसृत आत्म-जीवनी के आभास मिल पाए हैं उन सबको धारा-वाहिक रूप से हिन्दी में अनुवाद किया गया है। बाल्य-जीवन, वैराग्य गृह-त्याग, साधुसंग, देशभ्रमण, वेदविद्यालय, प्रचार, वेदविद्यालय-स्थापन, शास्त्रार्थ, शंका-समाधान आदि नामों से महर्षि की अपनी जीवनी के बारे में अपने मुख से निःसृत वाणियाँ रखी गयी हैं जो कि क्रमानुसार, यहाँ प्रकाशित की जा रही हैं।

—दीनबन्धु वेदशास्त्री
आचार्य आर्यसमाज, कलकत्ता

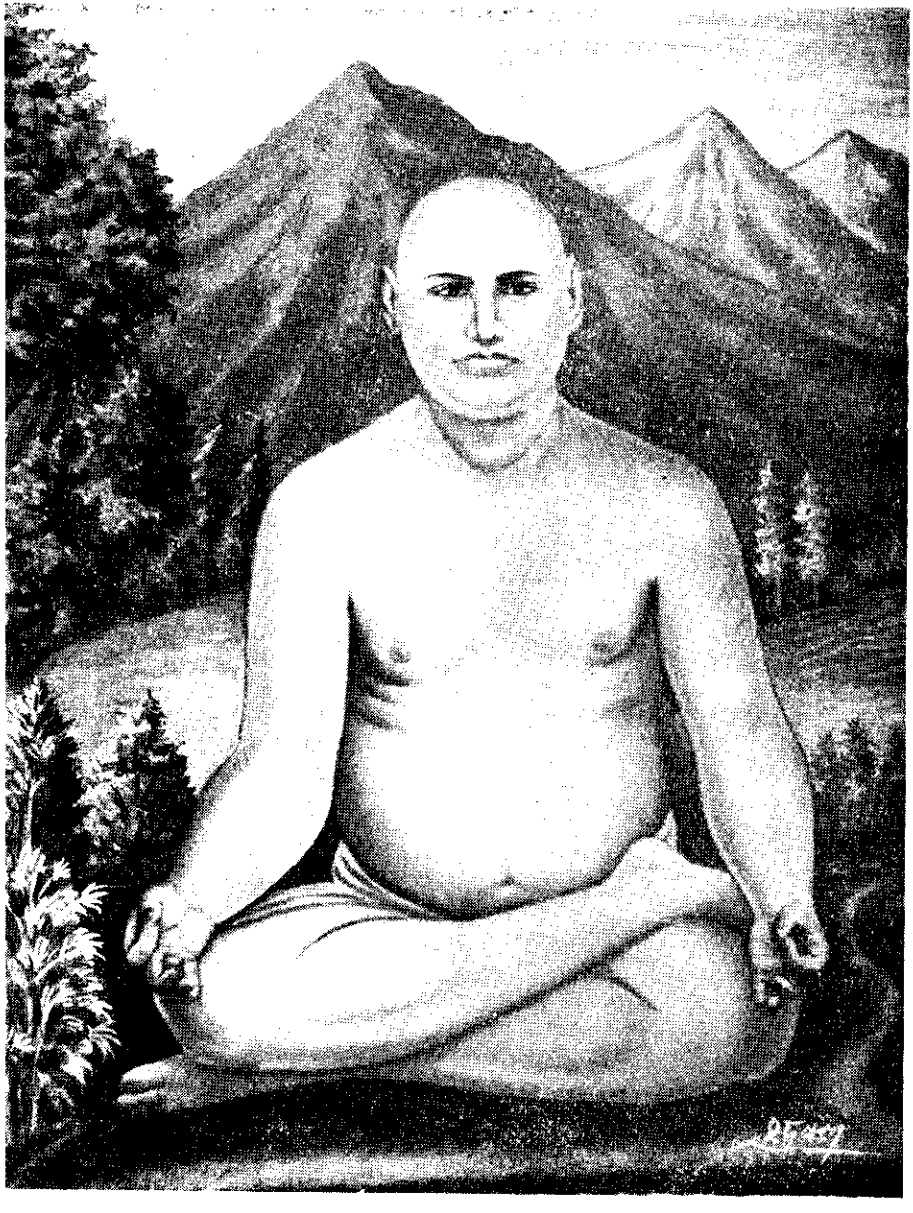

योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती

❀ योगी का आत्म-चरित्र ❀

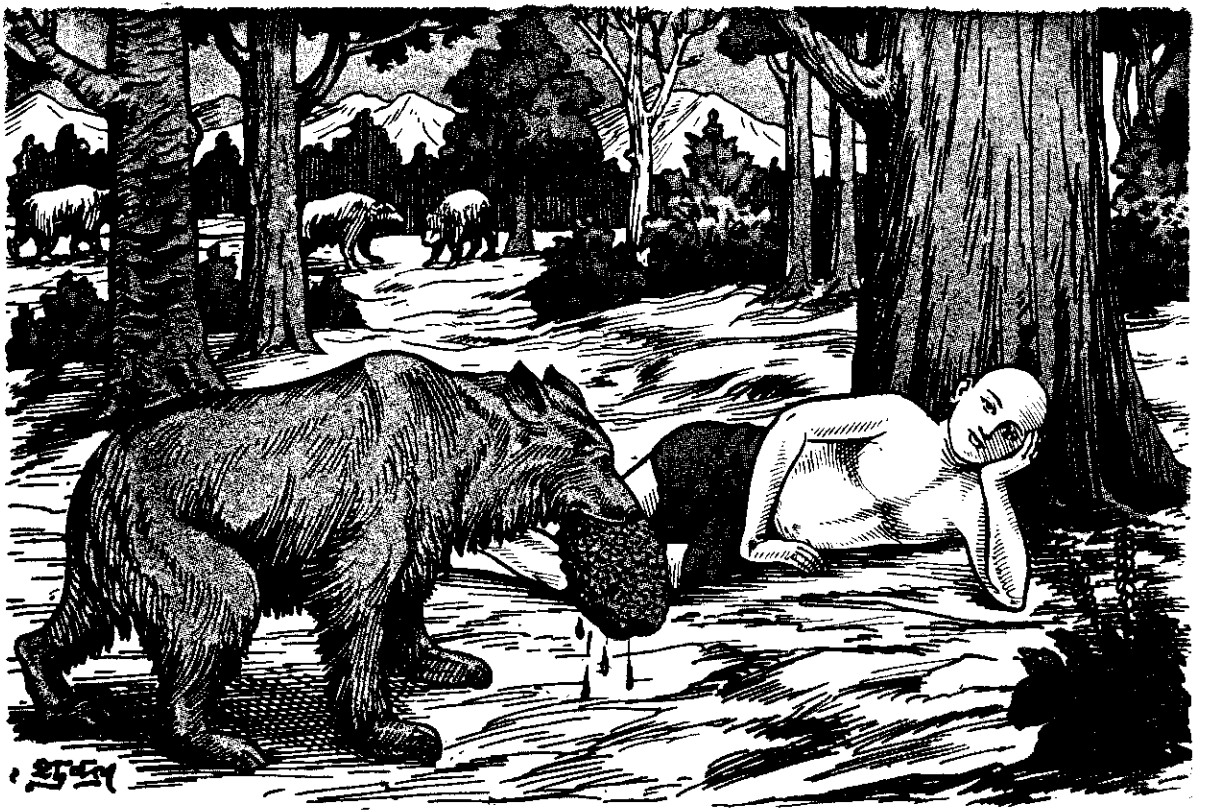

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।वेद

[illegible]

योगेश्वर महर्षि दयानन्द का आत्मचरित्र

प्रथम अध्याय

बाल्य-जीवन

(१)

मेरा जन्म-स्थान और जन्म-काल :—गुजरात (गुर्जर) प्रदेश के काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के अन्तर्गत मौर्वी राज्य में डेमी नदी के किनारे अवस्थित एक नगर में सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) में औदीच्य ब्राह्मण कुल में मेरा जन्म हुआ था। इस हिसाब से मैं गुजराती ब्राह्मण (सन्त) संन्यासी हूं और दूसरे हिसाब से मैं केवल एक भारतीय संन्यासी हूं। मेरी अवस्था अब (सन् १८७३ में) प्रायः ४८ वर्ष की है।

मेरा वंश-परिचय—वेद-विरोधी बौद्ध और जैन मतों के प्रबल प्रचार होने के कारण कई एक प्रान्त प्रायः वेद-भ्रष्ट हो गये थे। यथा—

'अंग-बंग-कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च ।
तीर्थ-यात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति ।।"

(प्राचीन स्मृति वचन)

अर्थात् तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य के विना दूसरे उद्देश्य से अंग (उत्तर विहार), बंग (पूर्व-पश्चिम बंगाल), कलिंग (उड़ीसा और आगे दक्षिण देश), सौराष्ट्र (काठियावाड़ राज्य) और मगध (दक्षिण विहार) प्रदेश में जाने से प्रायश्चित्त का भागी बनना पड़ता है।

सौराष्ट्र को वेद-भ्रष्टता के पाप से बचाने के लिये आज से लगभग आठ सौवर्ष पूर्व वहाँ के धर्म-भीरु राजा मूलराज ने उत्तर भारत से करीब एक हजार वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाकर सौराष्ट्र देश में बसाया था। सारे गुजरात प्रान्त में ये लोग फैल गये थे। मैंने उन्हीं में से एक ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया था। वंशगत रूप में मेरा परिचय दिया जाय तो यह है कि मैं साम

वेदी, ताण्ड्य ब्राह्मणों के अन्तर्गत, दाल्भ्य गोत्रीय त्रिपाठी हूं। त्रिपाठी का तात्पर्य है—जो लोग वेदमन्त्रों के पद-पाठ, क्रमपाठ और जटा पाठ—इन तीन पाठों को जानते हैं।

माता-पिता का परिचय—मेरे पिताजी धनाढ्य जमीदार कुसीद-जीवी (Money lender), सरकार के राजस्व आदायकारी (Revenue-officer) और प्रभाव-शाली कट्टर शैव ब्राह्मण थे। माता देवी, अति सरल, अमायिक, दयावती और वैष्णवमत की अनुगामिनी थीं। पिताजी शैव थे और माता जी वैष्णवी थी। पिता को चाकचमक और आडम्बर अच्छा लगता था। (ह०ले०पृ०१) बाहर जाने के समय पिताजी के साथ सदा ही पाईक (सैनिक) बकन्दाज (अंगरक्षक) और सिपाही रहते थे। पिताजी शैव धर्म के आचरण में दृढ़ थे, माताजी वैष्णव धर्म के आचरण पर, इसलिये आपस में कभी-कभी द्वन्द्व कलह विवाद-विसम्वाद भी होजाता था। लेकिन कोई उग्र नहीं था। पिताजी संस्कृत व्याकरण और वेद के अभिज्ञ थे। माताजी हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान, संस्कृत का मामूली ज्ञान और रामायण-महाभारत, पुराणों की कहानियों का पूरा ज्ञान रखती थीं। पारिवारिक स्थिति की रक्षा के लिये दोनों ही सजग थे और दोनों ही सदाचारी थे। पिताजी के अन्दर क्रोध आने पर माताजी क्षमा-प्रार्थना कर लेती थीं और माताजी के अन्दर क्रोध आने पर पिताजी भी क्षमा मांग लेते थे। इसलिये आपस में कभी वैमनस्य का भाव नहीं आता था। संसार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं था।

मेरा जन्म—परन्तु दोनों के चित्त कभी-कभी अप्रसन्न हो जाते थे क्योंकि लोग विवाह के दीर्घकाल उपरान्त निःसन्तान थे। विवाह के समय पिताजी की आयु इक्कीस और माताजी की वयः बारह वर्ष की थी। पिताजी की वयः पैंतीस और माताजी की वयः छब्बीस वर्ष की हो गयी थी, तो भी सन्तान उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिये दोनों के चित्त में अप्रसन्नता स्थायी रूप से बैठ गयी थी। पिताजी अपने उपास्य देव शिव से और माताजी भी अपनी उपास्य देवता विष्णु जी से सन्तान मांगते थे। प्रार्थना सबकी सब व्यर्थ बन गयी थी। कभी-कभी माता-पिता समझते थे कि विष्णु भक्त माता की प्रार्थना से शिवजी रुष्ट हो जाते हैं और उसी समय शिव-भक्त पिताजी की प्रार्थना के कारण विष्णु भी रुष्ट हो जाते हैं। (ह.ले. पृ०२ इसलिये दोनों की प्रार्थनाएँ ही व्यर्थ हो जाती होंगी। अतः दोनों ने

ही प्रार्थना करना बन्द कर दिया था। सन्तानाभाव के कारण सांसारिक सुख दोनों को शान्ति नहीं दे सका।

मेरे मातामह का गृह हमारे गृह से लगभग पाँच कोस की दूरी पर था। माता-पिता दोनों मेरे मातामह से परामर्श करने के लिये वहाँ गये थे। विचार-विमर्श के बाद निश्चय हुआ कि मेरे पिता जी दूसरा विवाह कर लेवें और वह विवाह मेरी माता जी की चौथी बहन पन्द्रह वर्ष आयु वाली मेरी मौसी से हो जाय। माता जी ने भी इसमें सम्मति दी थी। दो-तीन महीने के बाद ही विवाह होगा,ऐसा निश्चय होगया था। लेकिन एक महीने के अन्दर-अन्दर ही पता लग गया कि माताजी के सन्तान होने वाली है। दूसरा विवाह करने का संकल्प बन्द हो गया। यथासमय मेरी माता ने पुत्र-सन्तान प्रसव किया था। वह सन्तान ही मैं हूं। माता-पिता के पुत्र-सन्तानलाभ होने के कारण सब कोई आनन्दित और प्रसन्न हुए थे। माता जी ने बहुत दिन पहले मान्यता रखी थी कि सन्तान-लाभ होने से विष्णु भगवान् के नाम पर एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगी, संतान के वजन के अनुरूप सोना और चान्दी ब्राह्मणों को दान दूँगी। ऐसा ही हुआ था। सोना और चांदी के अन्दर माताजी के जेवर पिताजी के मोहर सम्मिलित थे।

नामकरण-संस्कार—मेरे जन्म के दिन से सौ दिन बाद मेरे पितामह और हमारे कुल-पुरोहित के सहयोग से मेरा नामकरण-संस्कार हुआ था। उस समय भी एक झंझट पैदा हो गया था। पिता जी ने चाहा था कि पुत्र का नाम शिव जी के नाम पर हो और माता जी चाहती थी कि पुत्र का नाम(ह०ले०पृ० ३)विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार हो। इससे माता-पिता के बीच में विरोध पैदा हो गया था। इस दृश्य को देखकर निमंत्रित शतशः आदमी स्तम्भित हो गए थे। मेरे मातामह ने मीमांसा की कि पुत्र के दो नाम रखे जाते हैं—एक शिवजी के नाम के अनुसार और दूसरा विष्णु भगवान् के नाम के अनुसार। ऐसा ही दोनों को स्वीकार हो गया था। तदनुसार पिता जी और माता जी मुझको अपने-अपने रुचिकर नाम से पुकारते थे।

एक दुर्घटना—मैं धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। देखभाल करने के लिए पिताजी ने मुझको रत्नाबाई नाम की धात्री के हाथों में समर्पण कर दिया था। मुझे स्नान करवाना, खिलाना, पिलाना, बाहर लेकर घुमाना सब कुछ रत्नाबाई के ऊपर छोड़ दिया गया था। एक वर्ष के बाद मेरी जन्म-

तिथि का उत्सव मनाया गया। ब्राह्मणों को भोजन करवाना, गरीब-दुःखियों को अन्न-वस्त्र देना, नृत्य संगीत और हो-हल्ला शोर-गुल चल रहा था। रत्नाबाई को माताजी ने पुत्र को बाहर शांति से धुवा लाने का आदेश दिया था। रत्नाबाई हमारी धाई माँ थी। आदर, यत्न और स्नेह के साथ हमको खिलाती-पिलाती थी। मेरी रुग्णावस्था में रत्नाबाई को निद्रा नहीं आती थी, खाना-पीना छोड़ देती थी। मेरी शय्या के पास आँखों में आँसू लेकर उपविष्ट रहती थी, मेरे प्रति उसका माता का-सा स्नेह और ममता लगी रहती थी। आज उस धाई माता का चंचल मन विकृत हो गया। हजारों रुपये के जेवर पहने हुए मुझको गोदी में लेकर घूमती हुई मेरी धाई माता नदी के किनारे तक ले गई थी। निर्जन स्थान पर पहुँच गयी थी। मेरे शरीर से सारे आभूषण उतार लिए थे, अपने कपड़े के आँचल में सब बाँध लिये थे, मेरे मुख को अन्तिम वार के लिए चूम लिया था। मुझको नदी के पानी में फेंक देने लिए तैयार होगई थी, दो वार मुझको (ह.ले.४पृ.) फेंकने के लिए पानी के अन्दर उतरकर भी फेंक नहीं सकी, मैं हँसने लगा था, मेरे मुख पर धाई माता ने अस्वाभाविक रूप की हँसी देखी थी। उसका हृदय परिष्कृत हो गया, मुझको चूमती हुई पानी से ऊपर उठी और भीगे कपड़े पहने हुए रत्नाबाई ने मुझे माता के सम्मुख लाकर छोड़ दिया, रत्ना के पीछे-पीछे बहुत आदमी एकत्र हो गए थे। रत्नाबाई ने चिल्लाते हुए सबों के सम्मुख सारा हाल विस्तृत रूप से कह दिया। आँचल से जेबरों को खोलकर मेरी माता के सम्मुख रखकर, मुझको और एक वार गोदी में उठा के चूम लिया और "मैं प्रायश्चित्त करूँगी" "मैं प्रायश्चित्त करूँगी" बोलती हुई दौड़कर चली गई। पिताजी भी आ गए। उन्होंने सब कुछ सुना। सब आदमियों ने एक स्वर से यही कहा कि "धात्री पागल हो गई उसका इलाज होना चाहिये।" रत्नाबाई को वापस लाने के लिए तीन सिपाही भेजे, किन्तु मेरी धाई माता मिली नहीं। तीन दिन बाद समाचार मिला कि दो कोस की दूरी पर एक पुराने मंदिर में रत्ना ने गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या कर ली है। रत्नाबाई का कोई नहीं था। पिता जी ने रत्नाबाई के लिए पण्डितों की सम्मति के अनुसार श्राद्ध, शांति और मेरी जीवन-रक्षा के लिए पूजा-पाठ किया था और पीछे बोध गया तक आकर रत्नाबाई के उद्धार के लिए पिंडदान किया था। इस घटना को मैंने माता-पिता और दूसरों के मुख से वार२ सुना था। मेरे मन में संन्यास जीवन के अन्दर भी, इस घटना से मेरे माता-पिता और रत्नाबाई के चरित्र उज्ज्वल होकर रहे हैं, इनको भूल नहीं सका।

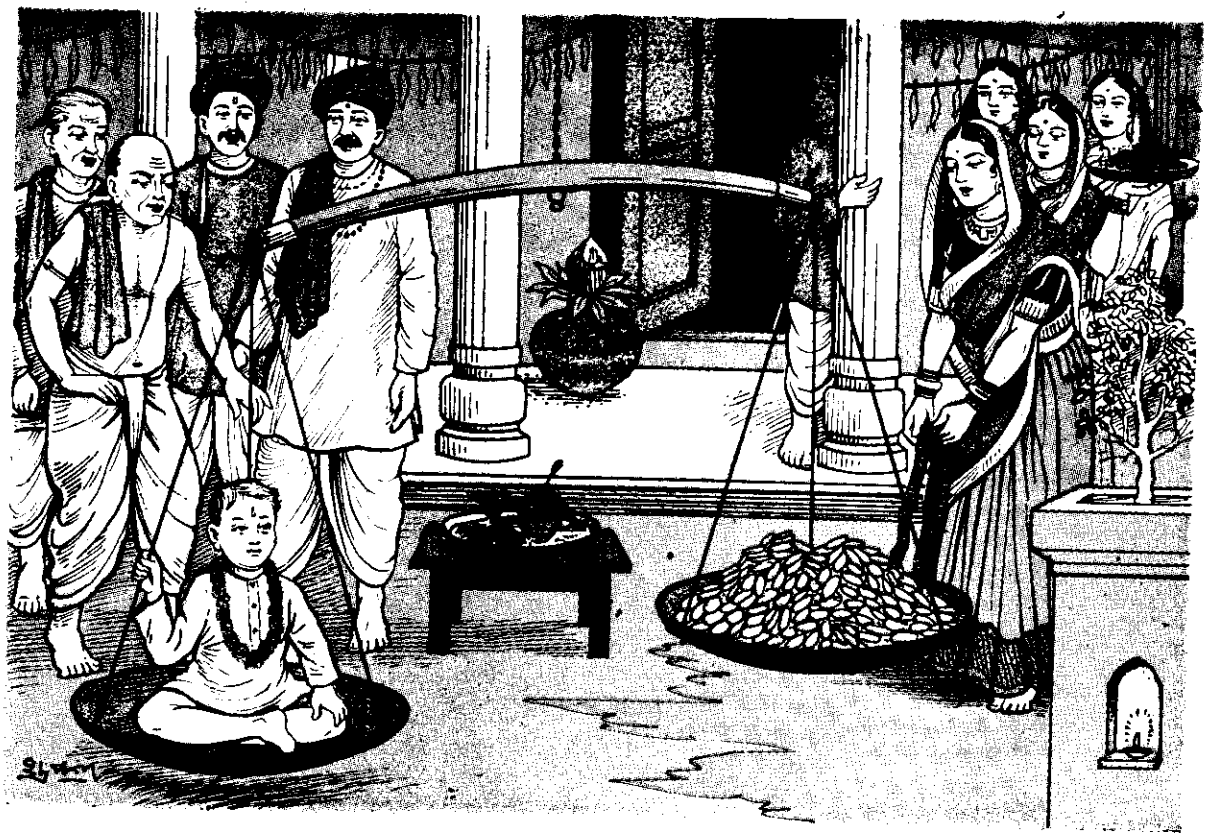

शिशु दयानन्द का स्वर्ण-रजत तुलादान

नदी में प्रवाह्यमान शिशु दयानन्द मुस्का दिया

शिशु दयानन्द की मुस्कान से विक्षिप्त भागा (पृष्ठ २०)

पं० ईश्वरचंद्र जी विद्यासागर ने इस कथा को हमसे दो वार सुना है। उस समय उनकी आँखों में हमने आँसू भी देखे हैं।

इस रूप से मैं माता-पिता को संतान-लाभ का सुख और दुःख देता हुए बड़ा होने लगा। माता-पिता पहले-पहल भगवान् से केवल एक ही संतान के लिए प्रार्थना करते थे। अब पिता जी शिवजी से कार्तिक और गणपति जैसे पुत्र माँगते थे और माताजी विष्णु भगवान् से लक्ष्मी सरस्वती जैसी कन्या माँगती थी। पीछे और संतान माता-पिता को प्राप्त हुई थीं। हम सब मिलकर माता-पिता के पाँच संतान पैदा हुए थे। प्रथम मैं, दूसरी लड़की, तीसरा लड़का, चौथी लड़की और पाँचवाँ लड़का। पाँच संतान पाकर माता-पिता दोनों सुखी थे। (ह० ले० पृ०५)

(२)

मेरा विद्यारम्भ संस्कार—पंचम वर्ष की वयः में मेरे पिता ने मेरा विद्यारम्भ संस्कार किया था। पिता ने चा-खड़ी से कृष्णवर्ण के प्रस्तर पर मेरे हाथ से स्वर वर्ण और व्यंजन वर्ण लिखवाये थे। इस उपलक्ष में पूजा पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था। अब से मेरे पिता और अभिभावक मुझ को कुल-परम्परागत धर्माचरण के साथ-साथ धर्मशास्त्र-पाठ और भिन्न-भिन्न स्तवन-श्लोक और रामायण, महाभारत, पुराणादि से कहानियाँ याद कराने लगे। तब से मैं वेदमंत्र भी कण्ठस्थ करने लगा था। इस रूप से मेरे तीन वर्ष बीत गए थे। मेरे अपर भ्राताओं को भी इस रूप की शिक्षा दी जाती थी। मेरी बहनों के लिए इस रूप की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। हम माता के पास भाई-बहन सब मिलकर महाभारत और रामायण की कहानियाँ सुना करते थे। माता जी को लिखना नहीं आता था, लेकिन पढ़ना आता था। माता जी ने बोल दिया था कि लड़कियों के लिए लिखना पाप है और पढ़ना पुण्य है। गुरुजनों के प्रति, अतिथियों के प्रति कैसे व्यवहार होने चाहिएँ, माता जी और पिता जी हम सब भाई-बहनों को यह शिक्षा देते थे। गृह में हमको तीन वर्ष में इस रूप की कुल-परम्परागत धर्म की और व्यवहार की शिक्षा मिल गई थी।

(३)

मेरा यज्ञोपवीत संस्कार—अष्टम वर्ष की वयः में मेरे यज्ञोपवीत संस्कार का प्रबन्ध हुआ था। इसके उपलक्ष्य में एक सौ वेदज्ञ औदीच्य

ब्राह्मण निमन्त्रित हुए थे। इन लोगों ने एक दिन पहले ही आकर प्रारम्भिक यज्ञ और वेद-पाठ आरम्भ कर दिया था। मेरे पिताजी ने मेरे लिये सोने का तीन तार वाला यज्ञोपवीत बनवाया था। प्रत्येक ब्राह्मण को भोजन के बाद एक-एक कपड़ा, लोटा और दस-दस रुपये दक्षिणा दी गयी थी। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद मुझको १० दिन के लिए घर में बन्द रहना पड़ा था। यह १०दिन गायत्रीमन्त्र के जप में और सन्ध्योपासना में ही बीत गए। १०दिन के बाद यज्ञोपवीत धारण करके बाहर निकल आया था। मेरी झोली में कुछ न कुछ भिक्षास्वरूप(ह. ले. ६ पृ.) सबने दिया था। बड़ौदा और पूना के दो राजकर्मचारी पिताजी के बन्धुओं के रूप से इस यज्ञोपवीत-संस्कार में उपस्थित थे। इन दोनों ने और पिता जी ने मेरी झोली में कई एक मोहरें डाली थीं और माताजी ने फल और कच्चे चावल डाले थे। यज्ञोपवीत-संस्कार के पश्चात् प्रतिदिन हम तीन बार संध्योपासना करते थे और गायत्री मन्त्र का जप करते थे। पिताजी ने स्वयं हमको रुद्राध्याय की शिक्षा दी थी और समग्र शुक्ल यजुर्वेद का पढ़ाना आरम्भकर दिया था दोवर्ष के अन्दर हमने समग्र शुक्ल(ह.ले.७पृ.) यजुर्वेद और शेष तीनों वेद के चुने हुए अंशों को कण्ठस्थ कर लिया था। इसके बाद पिता जी ने शिवपूजा की नियम-विधि-व्यवस्था की शिक्षा दी थी। शिवपूजा के लिए भिन्न-भिन्न उपासना, व्रतधारण और उपवासादि की भी शिक्षा दी थी। अब हमने स्वयं शिवपूजा करना शुरू कर दिया था।

पिता जी ने मेरी चौदह वर्ष की वय में शिव चतुर्दशी के व्रत-धारण के लिये मुझे आदेश दे दिया—'इसके लिये कठोर उपवास करना है'। माता जी ने प्रतिवाद किया था। इस विषय में माता और पिता के अन्दर कलह-विवाद-विसम्वाद शुरु हो गया था। माताजी ने पराजय स्वीकार किया था और मैंने शिवपूजन के लिये व्रत धारण कर लिया था। पिता जी से हमने इस व्रत धारण का क्या प्रकार है' पूछा था। पिताजी ने कहा था—'कि शिवरात्रि के ४ प्रहर तक जागते हुए ४ वार पूजा करने से शिव जी स्वयं आकर दर्शन देंगे। मैं परम श्रद्धा-भक्ति के साथ पूजा के लिये तैयार हो गया। पिता जी के हाथों से माताजी मेरी रक्षा नहीं कर सकीं। मैं भी जगत् के प्रलयकर्ता शिवजी के दर्शन के लिए लालायित हो गया था। माताजी मुझको इस सौभाग्य से वंचित करना चाहती थीं।

मैंने माताजी की बातें नहीं सुनीं और मैं शिवपूजा के लिए सब कष्ट सहन करने के लिए उद्यत हो गया था।

सनातन कुल-धर्म की रक्षा—मेरे पिताजी के सम्मुख अब सनातन कुलधर्म की रक्षा का विकट प्रश्न उपस्थित हो गया था। पिताजी जन्मगत कट्टर शैव-ब्राह्मण थे और माताजी (ह. ले. ७ पृ.)जन्मगत कट्टर विष्णु भक्त ब्राह्मणी थी। गुजरात प्रान्त के महाराष्ट्र के शासनाधीन होने से, वहाँ महाराष्ट्र प्रान्त के सर्वप्रधान धर्म शैव-मत का व्यापक प्रचार था। वीठल रावदेव जी ने सारे गुजरात प्रान्त में सैकड़ों शिव-मंदिरों की स्थापना की थी। मेरे पिताजी ने भी डेमी नदी के किनारे अनेक शिव-मंदिर बनाये थे।

हमारे पूर्वजों ने कुलके नियम बनाये थे कि उनके कुल में उत्पन्न होने वाले पुत्रों की पाँच वर्ष की वय: में ही देवनागरी अक्षर का परिचय, वर्णमाला का लेखन और पठन की शिक्षा पूरी होनो चाहिए। आठ वर्ष की वय में यज्ञोपवीत संस्कार होने के साथ ही वेदाध्ययन और मृण्मय-शिव-लिंग पूजा का अभ्यास शुरू होना चाहिए। चौदह वर्ष की आयु में शिव-चतुर्दशी के उपलक्ष्य में व्रतधारण करके शिव पूजा की दीक्षा लेनी चाहिए। पिताजा इस कुलगत क्रम के अनुसार मेरे धर्म-जीवन को निर्मित करना चाहते थे। माताजी ने इसमें बाधा डाल दी थी। छोटी अवस्था में शिव पूजा का उपवास रखना मेरे लिये बहुत ही कष्टदायक होगा—यह उनको चिन्ता थी। पिताजी ने मुझको शिवचतुर्दशी के व्रत धारण करने के माहात्म्य को सुनवा दिया था। मुझे वह बहुत ही रुचिकर मालूम हुआ था। मैं शिवचतुर्दशी के व्रतधारण और दीक्षा लेने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। इस कार्य के योग्य १४ वर्ष की आयु मेरी भी हो गयी थी।

नगर से बाहर डेमी नदी के किनारे पिताजी के विशाल शिव मंदिर में पूजा करने और दर्शन के लिये रात्रि को बहुत जनसमुदाय एकत्र होने लगा। पिताजी के साथ मैं भी वहाँ पहुँच गया। व्रतधारण किया गया, अब पूजा और दीक्षा लेनी बाकी है। रात्रि में जागते हुए चारों प्रहरों में चार वार पूजा करने के नियम हैं। प्रथम प्रहर में दूध के द्वारा, द्वितीय प्रहर में दधि के द्वारा, तृतीय प्रहर में घृत के द्वारा और चतुर्थ प्रहर में मधु के द्वारा शिवलिंग को स्नान कराके अर्घ्यदान और पूजादि करने का नियम है। मैंने देखा कि प्रथम और द्वितीय प्रहर की पूजा देने के बाद एक-एक

करके सबके सब व्रतधारी सोने लगे। मेरे पिताजी भी सो गए। पुजारी लोग एक-एक करके बाहर चले गये। मैं शिवजी का दर्शन करने की लालसा से जागरूक रहा। मैंने देखा कि एक चूहे ने शिवजी के सिर पर चढ़ कर चावल, दूध, दही और शक्कर खाना आरम्भ कर दिया और शिवजी चुपचाप ही रह गए। मेरे दिमाग में तत्काल चिन्ता उत्पन्न हुई कि जगत् के प्रलयकर्त्ता यह शिव नहीं हैं। ये सब पूजा, उपवास और रात्रि-जागरण ढोंग-मिथ्या और वृथा है। मैंने पिता जी को जगाया। शिवजी की अकर्मण्यता के बारे में प्रश्न किया।

उन्होंने मुझको धमका दिया और बोले "कलि काल में शिवजी का दर्शन सदा नहीं होता। इस रूप से पूजा करने से प्रसन्न होकर कभी-कभी दर्शन भी देते हैं।"

मेरा प्रश्न था "कि यह शिव वही शिव हैं कि नहीं" ?

पिताजी ने कहा—"यह शिव उनकी प्रतीक है।"

मुझे सारे जीवन के लिए ज्ञान प्राप्त हुआ कि शिव जालशिव है और अक्षम है। इसकी पूजा करना व्यर्थ है। मैंने घर जाना चाहा। पिता जी ने एक सिपाही के साथ मुझे घर भेज दिया और बोल दिया कि घर जाकर भोजन नहीं करना। व्रत को नहीं तोड़ना। मैंने भूख के कारण, घर जाकर ही माताजी से मिठाई मांगकर भरपेट खा ली। माताजी ने मेरे प्रति स्नेह के कारण पिताजी से डरते-डरते मुझको खिला दिया मैं सो गया और सवेरे देर से उठा। और जागते ही देखा कि माता-पिता के अन्दर प्रचण्ड झगड़ा हो रहा है। मैं भयभीत होकर रोने लगा। पिताजी भी मेरा अकल्याण सोचकर रोने लगे, पिताजी भूखे थे। इसी अवस्था में वे झट घर छोड़कर चले गये और एक सिपाही को साथ ले लिया।

(४)

व्रत-भंग का प्रायश्चित्त—मेरे व्रत-भंग के महापाप का प्रायश्चित्त क्या है ? इसका विधान जानने के लिये दो कोस की दूरी पर एक स्मृति शास्त्र के पंडित के पास पिता जी पहुंच गये। पंडित जी अन्य पंडितों से सलाह करने के लिये अगल-बगल दो-एक गांवों में गये। चार पंडितों ने निर्णय दिया कि यह महापाप उस नाबालिग लड़के को नहीं लगा, यह महापाप आप पिता को ही लग गया। पुराण के पूजा-धर्म की अवज्ञा की गयी। इसके लिये एक ही (इ.ले.१०पृ०)

प्रायश्चित्त है, आपके घर में शुक्ल पक्ष में एक-एक करके एक-एक रोज १८ पुराणों और कृष्ण पक्ष में १८ उपपुराणों का पाठ हो, तदनुसार दान-दक्षिणा हो और अन्तिम रोज इन कुल ३६ ब्राह्मणों को एक साथ भोजन और दक्षिणा की व्यवस्था हो। तय हो गया कि आगामी शुक्ला द्वितीया तिथि से ही पुराण का पाठ शुरू होगा। पिताजी ने पंडितों के हाथ से पानी पीकर उपवास का पारण कर लिया।

पिताजी डेमी नदी में स्नान कर सायंकाल घर पहुँचे और सबको प्रायश्चित्त का पूरा विवरण सुना दिया। इस प्रायश्चित्त का नाम "महा-पापघ्न" प्रायश्चित्त है। आगामी दिन अमावस्या में हमारे घर में ३६ पुराण-पाठी ब्राह्मणों का शुभागमन हुआ। संकल्प पाठ के साथ उन सब को वरण किया गया और भोजन करवाके दक्षिणायें दी गयीं तृतीय दिवस शुक्ला द्वितीया तिथि से पुराणपाठ शुरू होगा* मैंने जाकर पंडितों से पूछा मैं भी तो पुराण-पाठ सुन सकूँगा ?" पंडित लोगों ने हर्ष के साथ सम्मति दी। एक वृद्ध पंडित ने मुझे आशीर्वाद दिया—"वत्स तुम! यशस्वी बनो!" पिता जी ने प्रार्थना की "पुराणों के अश्लीलअंशों को छोड़ दिया जाय। पंडितों ने स्वीकार कर लिया।

तीसरे रोज से यथारीति* पुराण पाठ आरम्भ हो गया। क्रम इस प्रकार का रहा:—

प्रथम ६ दिन सात्विक महापुराणों का पाठ हुआ - यथा (१) विष्णु पुराण, (२) भागवत पुराण, (३) नारदीय पुराण, (४) गरुड़ पुराण, (५) पद्म पुराण और (६) वराहपुराण। दूसरे ६ दिन राजसिक पुराणों का पाठ हुआ—यथा (१) ब्रह्म पुराण, (२) ब्रह्मांड पुराण, (३) ब्रह्म वैवर्त पुराण, (४) मार्कण्डेय पुराण (५) भविष्य पुराण और (६) वामन पुराण। तीसरे ६ दिन तामसिक पुराणों का पाठ हुआ - यथा (१) शिव पुराण, (२) लिंग पुराण, (३) स्कन्द पुराण, (४) अग्नि पुराण (५) मत्स्य पुराण, और (६) कूर्म पुराण। शेष १८ दिन १८ उपपुराणों का पाठ हुआ— यथा (१) सनत्कुमार पुराण, (२) नरसिंह पुराण, (३) वायु-पुराण, (४) शिव धर्म पुराण, (५) आश्चर्य पुराण, (६) नारद पुराण,

---

* जहाँ-जहाँ शिवपुराणादि की कथा होती थी वहाँ पिताजी मुझको पास बिठाकर सुनाया करते थे। (थियासोफिस्ट उद्धृत आत्मचरित्र)

* इसी प्रकार पुराण-पारायण रीति आज भी पौराणिक जगत् में प्रचलित है। १५ सहस्र व्यय कर जो चाहे करालेo संo

(७) नान्दिकेश्वर पुराण (८) उशना पुराण, (९) कपिल पुराण, (१०) (१०) वरुण पुराण, (११) साम्ब पुराण, (१२) कालिक पुराण, (१३) महेश्वर पुराण (१४) कल्कि पुराण, (१५) देवी पुराण (१६) पराशर-पुराण, (१७) मरीचि पुराण और (१८) सौर पुराण।

प्रतिदिन पुराण-पाठक को १ मोहर, १ कपड़ा, १ लोटा और दक्षिणा के साथ भोजन दिया जाता था। ३६ दिन के बाद दूसरे दिन ३६ पुराण पाठी पण्डितों ने एकत्र होकर दक्षिणा के साथ भोजन किया और हम सबको आशीर्वाद दिया था। पिता जी उस दिन महापाप से मुक्त होकर प्रसन्न हो रहे थे। मैं ३६ दिन ही पिताजी के साथ बैठा हुआ सवेरे और सायं नियमित रूप से पुराणों की कहानियाँ सुना करता था। पिताजी के निदेशानुसार पुराणों के अश्लील भद्दे अंशों को छोड़ दिया जाता था। केवल उल्लेख करते जाते थे। जैसे कि गोपियों का वस्त्र हरण, या रासलीला, या शिवजी का मोहिनी मूर्ति धारण या कार्तिकेय का जन्म-लाभ इत्यादि। इस रूप से पिता जी ने अपने सनातन कौलिक धर्म की रक्षा की थी और मैंने पुराणों के रहस्य को जान लिया था इसलिये सारे जीवन पुराणों का विरोधी बन कर रहा।

प्रायश्चित्त के बाद पिता जी ने मेरे अध्ययन को ओर अधिक ध्यान दिया। पिताजी स्वयं वेदज्ञ पंडित थे। उनसे मैंने पहले ही शुक्ल-यजुर्वेद पढ़-कर सब-के-सब मन्त्र कण्ठस्थ कर लिये थे। हम लोग सामवेदी ब्राह्मण थे, किन्तु सस्वर सामवेद पढ़ाने के लिये ब्राह्मणों की विरलता होने के कारण शुक्ल यजुर्वेद पढ़ने की रीति हमारे अन्दर प्रचिलित हो गयी थी। पिता जी ने हमको इस चौदह वर्ष की आयु में वेदांग पढ़ाने के लिये ६ पंडित नियुक्त कर दिये थे। लगातार ४ वर्ष क्रमशः पंडितों से (१) याज्ञव-ल्क्य की शिक्षा (२) कात्यायन का कल्प (३) भट्टोजी दीक्षित का व्या-करण (४) यास्क का निरुक्त (५) पिंगल का छन्दः और (६) पराशर का ज्योतिष अध्ययन किया। (ह०ले०पृ०११) उसके साथ-साथ जैमिनि का पूर्व मीमांसा दर्शन और धर्मसूत्र, श्रौतसूत्र और गृह्य सूत्र अध्ययन के लिये एक याज्ञिक और साग्निक मराठी पंडित को नियुक्त कर दिया था। इस रूप से अध्ययन-समाप्ति में मेरी आयु १८ की हो गयी थी।

उस समय मैं माता-पिता का १८ वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र सन्तान था। मुझसे छोटी १४ वर्ष की बहन थी, उससे छोटा १० वर्ष का भाई था,

उससे छोटी ५ वर्षीय बहन थी और उससे छोटा २ वर्ष का भाई था। इस रूप से कुल मिलाकर माता-पिता के ५ सन्तान थे। मैं बड़ा था और मेरे पीछे दो भाई और दो बहनें थीं।

मेरे माता-पिता दोनों नातिदीर्घ और नातिह्रस्व देह वाले और गौर वर्ण के थे। पिता तेजस्वी भी थे, कोमल हृदय वाले भी थे। माता सरल सीधी सादी नारी थीं। दोनों ही धर्म-भीरु थे। माता जी की मिष्ट भाषा और मिष्ट आचरण से हम भाई-बहन मुग्ध थे। माता जी ने हम सब ही भाई-बहनों को रसोई बनाना सिखाया था। पिता जी ने हम सब भाइयों को दण्ड, बैठक, कुश्ती करना सिखा दिया था। ब्राह्म मुहूर्त में उठना यथा समय शौच जाना, नहाना, भगवान् की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, यथासमय भोजन करना, विश्राम करना, स्वाध्याय करना सिखाया था (ह० ले० १२ पृ०) रात्रि-जागरण नहीं करना, असत्संग नहीं करना, कलह-विवाद नहीं करना, देव, द्विज, अतिथि, गुरुजनों के प्रति नम्र भाव रखना, प्रणिपात नमस्कारादि करना, रोगी की सेवा-शुश्रूषा करना और घर के कार्य अपने हाथों से करना—इत्यादि कार्यों का हम सबको अभ्यास करवाया था पिता जी मसालेदार तम्बाकू पीते थे, लेकिन हम सब भाई-बहनों को हुक्का या तम्बाकू छूना तक का भी निषेध कर दिया था। माता जी हम सबको नियमित रूप से रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थीं। इस रूप से सुख और शान्ति से समय बीतता था।

वैराग्य लाभ

मेरी ६वर्ष की आयु में मेरे पितामह की मृत्यु हो गई थी(ह.ले.पृ.१३)सब आदमी रोते थे, मैं भी रोता था मृत्यु के सम्बन्ध में मुझे कुछ कुछज्ञात हुआ था। मेरी १८ वर्ष की अवस्था में, मेरी १४ वर्ष की बहन की मृत्यु हुई थी। मृत्यु के बारे में यहाँ से मेरा अनुभव शुरू हुआ। मेरी स्नेहशीला बहन की मृत्यु से मेरे हृदय पर बहुत ही आघात लगा था। लेकिन मुझे रोना नहीं आया था। केवल यह सोचने लगा कि वह कहाँ किसके पास चली गयी ? मुझे १८ वर्ष की आयु में भी कुछ समझ में ही नहीं आया था। सबसे जिज्ञासा की थी कि मेरी बहन की क्या दशा हुई ? एक ने कहा—तुम्हारी बहन प्रेत हो गयी। तुम एकाकी कहीं नहीं जाना। तुमसे वह मुलाकात कर सकती है। मैं उससे मुलाकात के लिए एकाकी ही घूमने लगा। नदी के किनारे श्मशान भूमि में बैठा रहता था। उसका नाम लेकर

जोर-जोर से पुकारने लगा। लेकिन बहन से कुछ जवाब नहीं मिला, कुछ पता भी नहीं चला। श्राद्ध के दिन पिताजी ने मेरी बहन के लिए पिंडदान किया। सबके सब कहने लगे—"अब तुम्हारी बहन उद्धार होकर चली गई, और कभी तुमसे मुलाकात होने का डर नहीं है। ठीक उसी समय मुझे रोना आया, रोना बन्द नहीं हो पाता था क्योंकि मैंने समझ लिया कि अब बहन से मुलाकात होने की आशा भी नहीं है।

ठीक एक वर्ष के बाद मेरी १९ वर्ष की आयु में मेरे चाचाजी की मृत्यु हो गई। चाचा जी को मृत्यु से मृत्यु का स्वाभाविक और अवश्यं-भावी रूप नजर आया। जीवन-भर के लिए वह हृदय में दृढ़ होकर बैठ गया। मृत्यु के साथ-साथ यहाँ का सब कुछ समाप्त हो जाता है। मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय भी नहीं है। मन में शंका उत्पन्न हुई कि मृत्यु से बचने के लिये कोई उपाय है कि नहीं! मैंने जान-पहचान के पंडितों से पूछा और पिताजी से भी पूछा—"मृत्यु से बचने का कोई उपाय है कि नहीं?" सभी ने मुझे कह दिया "कि योग विद्या ही एकमात्र उपाय है जिससे मनुष्य जन्म और मृत्यु (ह. ले. पृ. १४) से बच सकता है,, द्वितीय कोई रास्ता नहीं है।" तब से मेरा मन योगविद्या और योगियों के प्रति आकृष्ट हो गया था। "योगविद्या कहाँ से और किससे मिलती है!"—मैंने पिताजी से सर्वप्रथम यह प्रश्न पूछा था। इस प्रश्न को सुन कर ही पिताजी घबरा गये। उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। केवल माताजी से कह दिया कि लड़के की तरफ कड़ी नजर रखो। लक्षण अच्छा नहीं है। योग और योगियों के बारे में जब स्थानीय पंडित ज्ञानी और साधुओं से शंका-समाधान के लिये इधर-उधर घूमने लगा उस समय मेरी आयु करीब बीस वर्ष की हो गई थी। निर्जन स्थान में और एकाकी चिन्ता करना ही मुझे सबसे अच्छा मालूम होने लगा। भीड़-भाड़ अच्छी नहीं लगती थी।

उस समय मेरे पिताजी के बन्धुओं ने सलाह-परामर्श दिया कि देर नहीं करना, लड़के का विवाह कर दो, नहीं तो फिर पश्चात्ताप करोगे। लड़का संन्यासी बनने वाला है। माता-पिता को यह परामर्श अच्छा लगा मेरे लिये कोई अच्छी लड़की ढूँढ़ने के लिए जगह-जगह बन्धुओं को पत्र भी लिखे गए थे। जगह-जगह से मेरे विवाह के लिए पत्र आने लगे। कोई-कोई मुझको देखने के लिए और पूछताछ के लिए भी आने लगे। मैंने पिताजी से अति विनीत भाव से निवेदन और प्रार्थना की थी कि मेरा

अध्ययन अब तक असम्पूर्ण ही है। विवाह के प्रश्न को अभी बन्द रखिये अभी तक उपनिषद् और वेदान्त दर्शन पढ़ना बाकी है। वेदान्तदर्शन पढ़ने के लिए काशी ही सर्वोत्तम स्थान है। आप हमें अनुमति प्रदान करें, हम वेदान्त पढ़ने के लिए काशी में चले जायें। इस प्रस्ताव को सुन कर मेरी माताजी रोने लगीं काशी साधु-संन्यासियों का स्थान है। मेरा लड़का वहाँ जाकर साधु-संन्यासी बन जायेगा, फिर घर को वापस नहीं आयेगा। पिताजी ने गम्भीर होके सोचा और मुझको कह दिया—"तुमको काशी जाने नहीं दूँगा। मेरी जमींदारी और कृषि—व्यापार कर्म की कौन देख-भाल करेगा?" पिताजी का आदेश लंघन करना मेरे लिये कठिन हुआ। मैंने दूसरा प्रस्ताव पिताजी के सम्मुख रख दिया। हमारे वास-स्थान से तीन कोस दूरी पर एक प्रसिद्ध पंडित का नाम बताया। वे हमारे पिता से सुपरिचित थे। उनसे वेदांत पढ़ने के लिए प्रस्ताव रखा। पिता-जी ने सोच-विचार करके स्वीकृति दे दी। मैं वेदान्त पढ़ने के लिए वहाँ पहुँच गया। माता और पिता करीब-करीब निश्चिन्त हो गए कि काशी जाना तो बन्द हो गया—यही परम लाभ है। वहाँ जाके मनोयोग के साथ वेदान्त पढ़ने लगे। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति वासना-कामना, आसक्ति-अनासक्ति आदि विषय पर आलोचना के समय मेरे मुख से निकल गया था कि "मैं विवाह नहीं करूँगा।" इस बात को सुनकर ही पंडित जी ने मेरे पिताजी को मेरे भाव के बारे में सूचना देदी थी।

इस सम्वाद को सुनते ही पिता जी ने इस कठोर आदेश के साथ घर से एक नौकर को भेज दिया था—"तुम एक मुहूर्त के लिए भी वहाँ नहीं ठहरना। तुम तुरन्त घर आ जाओ।" इस जरूरी आदेश के पाते ही गुरुजी के साथ मैं पिताजी के सम्मुख उपस्थित हो गया था।

पिताजी बहुत ही दुःख के साथ गुरुजी से कहने लगे—'अति शैशव में इस हतभाग्य पुत्र को जेवरों की लालसा से नौकरानी नदी में फेंक देने वाली थी। किन्तु अलंकारों सहित इसको घर पर पहुँचा कर वह चली गई। दो वर्ष की उम्र में फिर उन्हीं अलंकारों की लालसा से चोर इसको चुरा के कहीं ले गये और दो रोज के बाद अलंकारों को रख कर इसको घर पर ही छोड़ गये थे। मानो भगवान् इसको अपने माता-पिता से पृथक् करना नहीं चाहता। हर्ष के कारण हमने इसके शरीर के वजन के समान सोने से ब्राह्मण-भोजन, पूजा-पाठ, हवन, यज्ञादि कराए थे। मेरे प्रति धाय और चोरों को भी दया आई थी। लेकिन इस

निष्ठुर पुत्र में हम माता-पिता दोनों के प्रति दया का लेश-मात्र भी नहीं है। अब से कभी इसको घर से बाहर नहीं रखेंगे। इसका विवाह ठीक हो गया। लेकिन सुनते हैं कि वह नहीं करेगा। किसी रोज घर छोड़कर संन्यासी (ह० ले० १६ पृ०) बन जायेगा। हमारे लिए यह असहनीय है। इसको छोड़कर हम दोनों माता-पिता जीवन-धारण नहीं कर सकेंगे।

माता जी ने कहा—'इसके विवाह के लिए किसी कन्या के पिता को वचन दिया गया है। लड़की रूपवती, गुणवती और सुशीला है। अब कन्या अरक्षणीया हो गयी है। विवाह के लिये एक महीने का और समय भी लिया गया है। अब विवाह के लिए सब कुछ प्रयोजनीय सामग्री संगृहीत हो गई है। इस महीने के अन्दर ही विवाह करना जरूरी है।

(मेरे प्रति)—बेटे! तुमने बहुत कुछ पढ़ लिया है। ज्यादा पढ़ने की जरूरत ही क्या है? हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं है।

फिर पिताजी ने कहा—इसके अन्दर बाल्यकाल से ही परलोक की चिन्ता आ गई थी। मेरे घर पर जो साधु, संन्यासी, भिक्षुकादि आते थे, उनसे पूछा करता था—"मैं मृत्यु के बाद क्या बन जाऊँगा? पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि भी मरने के बाद क्या बन जायेंगे। तुम लोग नहीं बोलोगे तो मैं किसी प्रकार से मर कर ही जान लूँगा।"

एक दिन इसने इस बात को जानने के लिए लड़कपन से वस्त्रों में आग लगा ली थी। लेकिन भगवान् ने इसको बचा दिया था। आज यह हम सबको छोड़ना चाहता है। वह अकेला नहीं जा सकेगा। हम साथ-साथ चलेंगे। बेटे! मेरी जमींदारी, धन-दौलत, व्यापार, घर-बार यह सब कुछ तुम्हारे लिये हैं। तुम्हारे छोटे-छोटे भाई-बहनों का पालन-पोषण और शिक्षा दीक्षा भी तुम्हारे ही जिम्मे है। तुम सब कुछ ग्रहण करो। मेरी आयु तो साठ वर्ष से भी ऊपर हो गई है। हम थोड़े रोज के बाद ही काशी जाकर श्री विश्वनाथ जी की शरण में पड़े रहेंगे। तुम विवाह कर लो तुम्हारी विवाहित स्थिति को देखकर ही हम दोनों शान्ति के साथ मर सकेंगे।

पिताजी बोलते-बोलते रोने लगे। माता जी भी रोने लगीं। मैंने बहुत ही कष्ट के साथ आँसुओं को आँखों में ही रोक रखा। (ह० ले० १७ पृ०) अपनी स्थिति को सम्हालने के लिए तीन रोज मैं घर में ही रहा। माता पिता के वचनों को मैंने धीर, स्थिर और शान्त भाव से ही सुन लिया

था। लेकिन मेरे सिर पर मानो वज्रपात होने लगा था। मेरे अन्दर घर-बार छोड़ने के लिए वैराग्य का भाव अत्यन्त प्रबल हो गया था। पितामह, बहन और चाचा जी की मृत्यु के दृश्यों ने मुझको नया जीवन दिया था। मैंने पंडितों से बहुत बार पूछा था—"मृत्यु से बचकर-अमृत लाभ करने के लिये रास्ता क्या है?" सब ही ने एक ही बात बोल दी थी—'योग विद्या का लाभ, योगियों से उपदेश ग्रहण और तदनुसार साधना करने से मृत्यु पर विजय-लाभ होता है।"

'मैं सब कुछछोड़-छाड़कर योगियों की संगति में रहूंगा और योग-विद्या प्राप्त करके मनुष्य समाज में इसका प्रचार करूँगा"। मेरे अन्दर यह संकल्प दृढ़ हो गया था। मेरी आयु उस समय इक्कीस वर्ष की थी।

माता-पिता से मैंने बहुत ही शान्त भाव से बोल दिया था—"मैं विवाह नहीं करूँगा। मेरे एक और भाई हैं। आप लोग उन सब पर सब आशा रखिये। घर में रहना मेरे लिये कठिन है।"

गुरुजी ने पिताजी से कह दिया—आप लोग लड़के पर कड़ी दृष्टि रखें। धीरे २ इसकी बुद्धि ठीक हो जायेगी। मेरी रक्षा के लिए पिताजी ने रक्षक नियुक्त कर दिया। माता-पिता ने मुझको संसार-धर्म के बारे में उपदेश सुनाये। लेकिन मेरे मन का संकल्प घर-बार छोड़ने के बारे में अचल-अटल था।

माता जी ने मेरे मन को पिघलाने के लिये मेरे साथ विवाह के सम्बन्ध वाली लड़की को और उसकी माता को मेरे सम्मुख बुलवा लिया था। उन लोगों ने मुझे कुछ जेवर उपहार में दिये थे। मैंने बहुत ही नम्रता के साथ उस उपहार को वापस दे दिया था। नमस्कार करके कन्या को औरउसकी माता को बोल दिया था—"आप लोग हमारे जीवन के व्रत-साधन में बाधा मत डालिये। मेरे व्रत-साधन के लिए आप लोग हमें आशीर्वाद दीजिये।" विवाह का प्रसंग उस रोज से ही बंद हो गया था।

गृहत्याग

मैं अब घर छोड़कर चला जाने के लिये सुयोग ढूँढ़ने लगा था। मेरा रक्षक एक दिन सायंकाल अन्यमनस्क हो रहा था। मैं भी जाने के लिये तैयार हो गया। उसने पूछा—"कहाँ जाते हैं? हमने कुछ भी नहीं कहा। उसने संदेह भी नहीं किया (ह० ले० १८ पृ०)। मेरे

शरीर पर एक ही कपड़ा था। दो हाथों को चार अँगुलियों में सोने की चार अंगूठियाँ थीं। कानों में और हाथों में दो-दो अलग-अलग अलंकार थे। मेरे कपड़े के आँचल में सौ रुपया बँधा हुआ था। नंगे पैर मैं घरसे निकल पड़ा। सदा के लिये माता-पिता, भाई-बहन, घर-बार छोड़ के एकमात्र भगवान् के आश्रय ही अपने को सौंपकर अतिद्रुत गति से कृष्ण पक्ष के अंधेरे में सायंकाल नदी के किनारे-किनारे चलने लगा था। कहाँ जा रहा हूं यह मुझे भी पता नहीं था। लगभग चार कोस जाने के बाद मैंने एक छोटे गाँव के अन्त में नदी के किनारे श्मशान घाट देखा। वहाँ एक छोटी निर्जन कुटिया थी। उसमें विश्राम के लिए प्रवेश किया। वहाँ सारी रात जगा हुआ निश्चिन्त होकर मैं भविष्य की कार्यसूची सोचने लगा था। आधी रात बीतने के बाद कई ठग (दस्यु) अचानक उस घर में प्रवेश कर मुझ को सरकारी गुप्तचर समझकर मुझ पर कटारों से चोट पहुँचाने के लिए तैयार हो गए थे। मैंने अपना सच्चा परिचय दिया। सब ही ने हमको पहचान लिया। सब ही ने मुझको अपने दल में सम्मिलित होने के लिये कहा। मेरे राजी न होने पर उन लोगों ने मेरी अंगुलियों से दो अंगूठियाँ लेकर मुझको छोड़ दिया और वटमारी से उन लोगों ने जो कुछ संग्रह किया था सब वहाँ बैठकर आपस में बाँटा और वहाँ से चल दिये। प्रभात होने पर, मैंने अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी।

—:०:—

द्वितीय अध्याय

(१)

भ्रमण और संन्यास ग्रहण

(ह. ले. पृ. १८) योगियों के सन्धान में मैंने भ्रमण किया था। भ्रमण करना मेरे लिये कष्टकर नहीं था। पिता जी की प्रेरणा से परिश्रम करने की आदत-पान-आहार का संयम, शारीरिक और मानसिक व्यायाम, क्षुधा-तृष्णा का सहन आदि का अच्छा अभ्यास मेरे अन्दर विद्यमान था। भ्रमण के पहले दिन रात को ठग-डाकुओं से भी मैंने पूछा था—"योगविद्या सीखने के लिए योगी कहाँ मिलते हैं?" उन लोगों ने मेरी दो अंगूठियाँ लेने के बाद बताया था कि सिद्धपुर के मेले में जाने से बहुत से योगी मिलेंगे। अन्य साधुओं से भी सिद्धपुर जाने के लिए मुझे परामर्श मिला था। दूसरे दिन अति सवेरे श्मशान की कुटिया से रवाना होकर पन्द्रह कोस से भी अधिक रास्ता पार करके चला गया था। कोई मुझको पहचान न सके इसलिये प्रधान-प्रधान मार्गों को छोड़ कर मैदान, जंगल आदि निर्जन स्थानों से अग्रसर होने लगा, अगर कहीं मन्दिर मिल गया तो वहाँ विश्राम और जलपान भी कर लेता था।

किसी राजकर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया था और मेरी तलाशी भी ली थी। किसी आदमी ने कह दिया कि "यह अवधूत साधु है, यह किसी मठ मन्दिर या आश्रम में नहीं रहता। केवल मनमाना भ्रमण करता है।" मेरे पास रुपये थे कानों में और हाथों में जेवर थे इसका भी किसीने ख्याल नहीं किया। राज-कर्मचारी ने मुझको छोड़ दिया था। उनसे पता लगा था कि एक नव-जवान घर से भाग गया है, उसके सन्धान में उसके पिता कई एक अश्वारोही सैनिकों के साथ घूम रहे हैं। मैंने अनुमान कर लिया कि मेरे पिता जी ही मेरे संधान में घूम रहे हैं। मैंने निरुपाय होकर समीप के किसी श्मशान से कुछ भस्म लेकर वदन में लगा लिया जिससे झट मेरी

पहचान न हो सके। चिन्ता रही केवल अलंकार और रुपये के लिये। मन में इस बन्धन के कारण उद्वेग और अशान्ति बढ़ने लगी थी।

थोड़े क्षण के बाद एक भिक्षुक-ब्राह्मणों के झुण्ड से साक्षात् हुआ। सब के सब मंत्रपाठ के साथ आशीर्वाद देने लगे और बोलने लगे—'बच्चा! कितने दिन से साधु बन गया है। देखने में राजपुत्र-सा मालूम पड़ता है। अरे, कुछ त्याग होना चाहिये। बिलकुल मुक्त हो जाओगे, शान्ति मिलेगी, दो नावों में पैर मत रखो। अलंकार रुपये आदि तुम्हारे पास जो कुछ है भगवान् की सेवा में अर्पण कर दो। हम लोगों ने ऐसे ही किया है। भगवान् की सेवा के लिये हम लोग भिक्षा माँगते हैं। तुम भी हमारे साथ सम्मिलित हो जाओ। शान्ति मिलेगी। उनके उपदेश का प्रथमांश अच्छा ही मालूम पड़ा। हमने शेष दो अंगूठियाँ, कान-हाथों के अलंकार और सौ रुपये भिक्षुक ब्राह्मणों को वितरण कर दिये। उनके झुण्ड में सम्मिलित होने के लिये मैं राजी नहीं हुआ। अब अपने को बहुत हल्का समझने लगा।

यहाँ हमने सर्वप्रथम शैलानगर के अधिवासी लाला भगत नाम के प्रसिद्ध विद्वान् और योगी के विषय में सुना था। भ्रमण करता हुआ उन्हीं की सेवा में पहुँच गया। मुझे देख कर वे सन्तुष्ट भी हुए थे। उनके पास मैं योग-साधना सीखने लगा। शरीर और मन की शुद्धि के लिये उन्होंने एक आसन और मुद्राओं की शिक्षा दी थी। मैं उत्साह से उनके साथ योग-चर्या सीखने लगा। एक दिन उन्होंने कहा—"योगी बन जाना या योग-साधना में सिद्धि आदि का लाभ करना मानसिक और शारीरिक स्थिति पर ही है, तुम किसी आश्रम में नहीं हो। तुम न ब्रह्मचारी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थ और न संन्यासी हो।" उन्होंने मुझको ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश के लिये परामर्श दिया। वहाँ निर्मल चैतन्य नाम के किसी ब्रह्मचारी के साथ मेरा आलाप तथा परिचय हुआ था। मैंने उनसे दीक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना की। वे राजी हो गये।

ब्रह्मचारी निर्मल चैतन्य ने मुझ को समझा दिया था—"आचार्य शंकराचार्य प्रतिष्ठापित चार मठ हैं—हिमालय में जोशी मठ, दाक्षिणात्य में शृंगेरि मठ, पूर्व में श्रीक्षेत्र में गोर्वधन मठ और पश्चिम में द्वारिका में शारदा मठ। चारों मठों में ब्रह्मचारियों की उपाधियाँ पृथक्-पृथक् हैं—जैसे उत्तर मठ की आनन्द, दक्षिण मठ की चैतन्य, पूर्व मठ की प्रकाश और

पश्चिम मठ की स्वरूप। मैं दक्षिण मठ के अन्तर्गत निर्मल चैतन्य ब्रह्मचारी हूं।" दीक्षा लेने के लिये किसी निश्चित तिथि में मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करके 'शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी' नाम ग्रहण कर लिया था। मेरे पास जो जेवर और रुपये थे वह सब दान कर दिये थे। घर का एक मात्र चिन्ह एक वस्त्र था। अब उसको भी छोड़ दिया और गैरिक कपड़े पहन लिये। घर का दिया हुआ नाम और निशानी वस्त्र को छोड़कर मैंने बाह्य बन्धनों को तोड़ दिया है। मैं दक्षिण मठ का ब्रह्मचारी हूं—यह ही मेरा एकमात्र परिचय हुआ। अब मेरे अन्दर योगविद्या सीखने की स्थिति, योग्यता और अधिकार आ गये थे। अब अच्छे गुरु चाहिएँ। योगी लाला भगत ने मुझको सिद्धपुर मेले में जाने के लिये प्रेरणा दी थी। कोठकांग (डा०) में भी सिद्धपुर मेले के बारे में सुना था।

सिद्धपुर का मेला

कार्तिक महीने का समय था। कार्तिक महीने में ही सिद्धपुर में मेला लगता है। "वहाँ भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से योगी और योगसिद्ध पुरुषों का आगमन होता है" इस बात को सुन कर सिद्धपुर जाने के लिये मुझ में भी उत्साह आ गया था सिद्धपुर का प्राचीन नाम था "श्रीस्थल"। यह प्राचीन काम्यक वन के अन्तर्गत है। यहाँ महर्षि कर्दम का आश्रम था। सांख्यदर्शन सूत्रकार कपिल का यह जन्मस्थान था। गुर्जर देश के राजा मूलराज सोलंकी का कार्य यहाँ सिद्ध होने से इसका नाम सिद्धपुर पड़ा था। यह तीर्थ स्थान सरस्वती नदी के किनारे पर है। गुर्जर राज मूलराज सोलंकी और सिन्धुराज जयसिंह ने यहाँ सरस्वती नदी के किनारे पर (सिद्धपुर नामक तीर्थ स्थान में) रुद्र-महालय नाम का विशाल मन्दिर बनाया था! अलाउद्दीन खिलजी ने इसको नष्टभ्रष्ट कर दिया था। अब वह मसजिद के रूप में है। सिद्धपुर में पुराने-पुराने बहुत मन्दिर हैं। वहाँ नाना देशों से योगी योगसिद्ध साधक लोग मेले में आते हैं। सिद्धपुर जाकर योगी पुरुषों से मिलने से मृत्यु जय करने के बारे में मन की शंकाओं का समाधान हो जायेगा—इस आशा से मैंने वहाँ जाने के लिये संकल्प धारण किया था।

इससे पहले एक दुर्घटना घटी थी। मेरे जन्म स्थान के समीप बहुत से वैरागियों का वास है। एक दिन जब मैं ब्रह्मचारी के रूप में योगियों के सन्धान में घूम रहा था तब हमारे परिवार से सुपरिचित किशोरी वैरागी से अहमदाबाद के समीप मेरी भेंट होगयी थी। मुझे देखते ही वह दौड़कर

मेरे पास आ गया था। उसने पूछा—"तुमने गैरिक वस्त्र क्यों पहन लिया? कहाँ जा रहे हो? घर कब जाओगे? अपने माता-पिता का समाचार कुछ जानते हो कि नहीं?" मैंने जवाब दिया—"मैंने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर लिया है। इस लिये गैरिक वस्त्र मैंने पहन लिया है। मैं सिद्धपुर मेले में जाऊँगा वहाँ योगियों से मिलूँगा। घर नहीं जाऊँगा। माता-पिता के समाचार नहीं जानता हूं।" उसने कहा—"जैसे पिता दशरथ ने राम के अदर्शन के कारण देह छोड़ दिया था, तुम्हारी माता ने भी तुम्हारे शोक के कारण देह छोड़ दिया है। तुम सिद्धपुर नहीं जाकर पिता के पास चले जाओ।" मैं माता की मृत्यु के समाचार का विश्वास नहीं कर सका। मैंने उसेको कह किया "योग के सन्धान करने के पुण्यकार्यमें तुम बाधा मत डालो।"

मैं सिद्धपुर मेले में पहुंचा और वहाँ नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में रहते हुए योगी, साधु और महात्मा लोगों का संग करने लगा और साथ-साथ योग विद्या के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करता था। किशोरी वैरागी ने मेरा सब हाल पत्र के द्वारा पिताजी को सूचित कर दिया और सिद्धपुर मेले में जाने के लिये सनिबन्ध अनुरोध किया। पिताजी मेरे बारे में सूचना पाते ही चार सिपाहियों को साथ लेकर सिद्धपुर मेले में पहुंच गये थे। मुझको ढूँढ़ते हुए वहाँ नीलकंठ शिव मन्दिर में उन्होंने मुझे देख लिया। मैं वहाँ साधु और संन्यासियों के साथ शास्त्रार्थ और सत्संग कर रहा था, वे अचानक वहाँ चार सिपाहियों के साथ पहुंच कर मुझे डपटने लगे। "तू मेरे कुल में कलंक रूप में पैदा हुआ है, तूने मातृ-हत्या की है,* और भाग कर साधु संन्यासियों के अन्दर बैठ गया है। तुझको पकड़ने के लिये मैं यहाँ तक पहुँच गया हूं।" इस बात को सुनते ही चारों तरफ शोरगुल मच गया। मैं भाग न जाऊँ इसलिए एक साधु ने मुझको पकड़ लिया था। किशोरी वैरागी से मैंने माता जी का मृत्यु-संवाद सुना था लेकिन विश्वास नहीं किया था अब पिताजी की बात से विश्वास हो गया। साधु मुझको "खूनी खूनी" पुकार कर मारने के लिये तैयार हो गये। पिता जी ने घोषणा कर दी "मैं इसका पिता हूं। यह घर से भाग कर लापता हो गया था। पुत्रशोक के कारण इसकी माता की मृत्यु हो गयी है। यह ज्येष्ठ पुत्र और श्राद्धाधिकारी है। अगले चौथे दिन में

* यह ठीक हो था, देखें—"क्रोध के वश में होकर मेरे गेरुए कपड़े फाड़ डाले, तूम्बा फैंक दिया और मुझे मातृहन्ता कह कर भर्त्सना करने लगे।'—थ्यासोफिस्ट-गोविन्दराम०।

इसको श्राद्ध करना है। इस बात को सुनकर ही साधु-संन्यासी लोगों ने मुझको छोड़ कर पिताजी को घेर लिया और चिल्लाहट के साथ बोलने लगे —'इस पर माता-पिता का हक नहीं है। यह माता-पिता और संसार को छोड़कर हमारे साथ मिल गया है। और यह हमारे अन्दर एक बन गया है'। सरकारी कर्मचारी ने आकर संन्यासियों के आक्रमण से मुझको बचाया था।

पिताजी के अन्दर भी साहस आ गया। अपने शिर से सफेद पगड़ी को उतार कर मेरे हाथों में देकर बोले—"इसको पहन लो।" गैरिक वस्त्रों को उन्होंने छीन लिया और टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला। तूम्बे, भिक्षा-पात्र को भी उन्होंने तोड़ डाला। मैं पिताजी के चरण पकड़के बोला— "आप चलिये, मैं आप के साथ चल रहा हूं।" भीड़-भड़क्के से हम दोनों बचकर सिपाहियों के साथ चल दिये। सिद्धपुर मेले से कोस भर दूर आकर पिताजी ने सिपाहियों को आदेश दिया—"इस पर कड़ी नजर रखो, फिर भाग न जाय।' हमने एक पुराने सिपाही से पूछकर सुन भी लिया था कि मेरे शोक के कारण ही माताजी का देहान्त हो गया और श्राद्ध के लिये मेरा वहाँ पहुंचना जरूरी है। रास्ते में मैं बन्दी के समान जा रहा था। पिताजी का दृढ़ संकल्प था—मुझको घर संसार के कारागार में कैदी बनवाके ही रखेंगे।' मेरा दृढ़ संकल्प था—"मैं वहाँ कभी कैदी नहीं बनूँगा। माताजी तो चली ही गयी, पिताजी भी किसी रोज चले ही जायेंगे और कभी मुझे भी जाना होगा। तब क्यों मैं घर जा रहा हूं।" पिताजी जोर-जबर दस्ती से घर लेजा रहे हैं। मैंने रास्ते में खाना छोड़ दिया और केवल पानी पीकर और दूध पीकर रहने लगा। सिपाही लोग निश्चिन्त हो गये कि मैं अवश्य ही घर जाऊँगा। लेकिन मैं पिताजी से मुक्त होने के उपाय ढूँढ़ने लगा। एक रोज रात्रि के अन्त में पिताजी और सिपाही लोग गंभीर निद्रा में निद्रित थे। तब मैं पानी भरा हुआ लोटा लेकर धीरे-धीरे सबों के दृष्टि-पथ से बाहर जाकर द्रुत गति से जाने लगा। गांवों को छोड़ कर किसी बगीचे में घने वृक्ष पर छिपकर बैठ गया। वृक्ष के नीचे एक शिव मन्दिर था भूखा रात भर वृक्ष पर ही रहा। अति सवेरे वृक्ष से उतर कर फिर चलने लगा। सवेरे वृक्ष के ऊपर से मैंने देख लिया कि सिपाही लोग मुझको इतस्ततः ढूँढ रहे हैं। मैं वृक्ष से नहीं उतरा और समस्त दिन और आगे शाम को अन्धेरा होने तक वृक्षपर ही छिपकर रहा।

धीरे-धीरे वृक्ष से उतर कर फिर अति द्रुत गति से चलने के बाद मैं अहमदाबाद पहुँच गया। वहाँ पहुंचकर मैंने स्नान किया, कुछ चना खा लिया और पेट भर कर पानी पी लिया था अब सोचने लगा कि योगियों* के सन्धान में अब कहाँ जाऊँ ?

अहमदाबाद में—अहमदाबाद में आकर मैं योगियों की खोज में ही रहा। वहाँ मंदिरों की कमी नहीं है, वैष्णव तांत्रिक और जैनों के विशाल-विशाल मंदिर हैं। सब ही मंदिरों में आडम्बर अत्यधिक है। साधु-संन्यासियों के भोजन के लिए अभाव और कठिनाइयाँ नहीं हैं। किसी योगी से मिलने के लिए मेरी प्रबल इच्छा थी। सभी मंदिरों में संधान किया गया, मेरी प्रार्थना और इच्छा पर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। पास ही साबरमती नदी है। नदी के तट पर बहुत संख्या में एकांत और निर्जन आश्रम या कुटीर देखे। एक आश्रम में योगिराज-बाबा जी नाम के एक तांत्रिक साधु मिले। योगविद्या सीखने की इच्छा सुन कर आपने बहुत ही हर्ष प्रकट किया। उन्होंने मेरे स्वल्प भोजन के लिये दूसरे आश्रम में प्रबंध कर दिया और खड्ग धारेश्वर बाबाजी के आश्रम में योगविद्या सिखाने के लिये उनके आधीन मुझे छोड़ दिया। वहाँ मैं लगभग एक मास तक रहा। वहाँ मुझे पता लगा कि वैषयिक कार्यों के लिये योग तेरह प्रकार के हैं और परमार्थिक कार्यों के लिये चतुर्विध हैं।

वैषयिक योग—किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में परिवर्तित करना, दुर्लभ वस्तु को चिन्ता द्वारा जान लेने के उपाय जानना, प्राप्त वस्तु का संरक्षण करना, शब्दों की अर्थ-बोध-शक्ति को जानना, शब्दों का यथा-योग्य विन्यास करना, देह को स्वस्थ रखना, वस्तुओं के प्रकृत तत्वों को छिपाना, युक्ति पूर्वक वाक्यों का प्रयोग करना, अस्त्र धारण करने के

---

* इसे महर्षि दयानंद ने ता० २२-१२-७२ को कलकत्ते में अपने ठहरने के स्थान "नाईवान उद्यान" में संस्कृत भाषा में वर्णित किया था। इन अंशों के लेखक थे श्री नृत्यगोपाल चौधरी स्मृतिरत्न और श्री नवीन चंद्र अधिकारी व्याकरण-शास्त्री। पं० श्री विभूतिभूषण विद्यार्णव ने उसका बंगला में अनुवाद किया था। लेखक ने इसका प्रथमांश श्री रमेशचंद्र दत्त के गृह से और शेष अंश प्रसिद्ध ऐतिहासिक और साहित्यिक पं० श्रीसत्याचरण शास्त्री के गृह (रिषिड़, हुगली) से और पूर्वापर तथ्यों का संग्रह किया है।—संग्रह कर्त्ता

कौशल जानना, किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ मिलान, करना, एक तत्त्व के साथ दूसरे तत्त्व को मिलान कर देना और कार्य के कारणों को एक साथ जान लेना—ये त्रयोदश प्रकार के वैषयिक योग हैं।

पारमार्थिक योग—ये चार प्रकार के हैं—चित्त को एकतान यानी एकाग्र करना, सब-की-सब मनोवृत्तियों को रोक देना वस्तुविषयक चिन्ता-प्रवाह को उद्दीप्त करना और आत्मा को आत्मा के साथ या परमात्मा के साथ संयोग कर देना।

तेरह प्रकार के वैषयिक योग के आदि उपदेष्टा थे—उशना बृहस्पति इन्द्र, पुनर्वसु और अग्निवेश। पारमार्थिक योग के आदि उपदेष्टा थे—हिरण्यगर्भ, महेश्वर, शिवानी, कपिल, पंचशिख, जनक, वसिष्ठ, दत्तात्रेय, जैगीषवव्य, याज्ञवल्क्य और पतञ्जलि।

तेरह प्रकार के वैषयिक योगों के अवलम्बन से नीति, धनुर्वेद, आयु-र्वेद, गांधर्ववेद, शिल्प, कृषि, वाणिज्य और कला-कौशलों के शास्त्रों की रचना हुई है और चार प्रकार के योगों के अवलम्बन से अध्यात्म शास्त्रों की रचना हुई है।

पारमार्थिक योग-साधन के लिये चार प्रकार के पथ आविष्कृत हुए हैं। इनके नाम चतुष्पथ हैं। मन्त्र योग, लययोग, राजयोग और हठयोग ये चतुष्पथ हैं। राजयोग के लिये ऋषि पतञ्जलि का योग सूत्र सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

खड्ग-धारेश्वर बाबाजी से मुझको योग-विद्या के सम्बन्ध में बहुत ग्रन्थों का परिचय मिला था। इसलिये उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूं। लेकिन वहाँ बहुत दिन हम नहीं रह सके। बाबाजी मुझको योगविद्या की साधना के प्रथम पाठ सिखाने के लिए अति सवेरे नदी के किनारे ले गये और मेरे हाथ में "सिद्धि" नाम की वस्तु को खाने के लिये दिया। पूछने से पता लगा कि मंत्र से शुद्ध की हुई भंग ही सिद्धि है। मेरे सिर पर मानो वज्र-पात हुआ। मुझको मालूम था कि भंग नशा है। मैं तत्काल ही दौड़कर भागने लगा और गुरुजी भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगे। एक राज-कर्मचारी ने मुझे पकड़ लिया और थाने में बन्द करके रखा। गुरुजी पहले ही भाग गये थे। मेरी सब बातें सुनकर मेरे प्रति थानेदार को दया आई। उन्होंने मुझे डाँटा और अहमदाबाद के नशाखोर साधुओं के कुसंगों को छोड़कर बड़ौदा जाने के लिये सलाह दी क्योंकि वहाँ अच्छे-अच्छे मठ हैं। मैं 'तथास्तु'

बोलकर थाने से चला आया और योगिराज बाबा जी की सलाह के अनुसार बड़ौदा चला गया।

बड़ौदा में—अहमदाबाद से बड़ौदा पहुँच गया। रास्ते में किसी गृहस्थ के घर पर नहीं गया। मठ-मन्दिरों में जाने से ही प्रसाद के नाम पर भोजन मिला करता था। रास्ते में तीन रुद्राक्ष और त्रिशूलधारी मेरे साथ मिल गये थे। विदेश-भ्रमण की विद्या में ये बहुत ही दक्ष थे।

बड़ौदा पहुँचकर हम लोगों ने वहाँ के चैतन्य मठ में आश्रय लिया। चैतन्य मठ वेदान्त प्रचार का प्रसिद्ध केन्द्र है। भोजन के लिये पूरा प्रबन्ध है। अधिकांश संन्यासी वहाँ शंकराचार्य के एकान्ताद्वैतवादी हैं लेकिन वहाँ सभी सम्प्रदायों के संन्यासियों और सिद्धान्तों से मेरा परिचय हुआ था। मुझे वहाँ बहुत गुरु मिल गये थे। सब ही गुरु मुझ को पुत्र-दृष्टि से देखते थे। सभी ने मुझको वेदान्त के भिन्न-भिन्न भाष्य पढ़ाये। स्वामी मुक्तानन्द से आचार्य शंकर का 'शारीरिक भाष्य" विवरण टीका "भामती टीका मंडन मिश्र की, "इष्ट सिद्धि" विद्यारण्य की, 'पंचदशी" सदानन्द की, "वेदान्तसार", आनन्द गिरि का, "न्याय-निर्णय" गोविन्दानन्द का, "रत्न प्रभा" प्रकाशानन्द की, 'सिद्धान्त मुक्तावली", और मधुसूदन सरस्वती की "अद्वैत सिद्धि" पढ़ने के लिये मुझे पूरा अवसर मिला था।

स्वामी जीवानन्द ने मुझे वेदान्त दर्शन पर भास्कराचार्य का "भेदाभेदवाद", मध्वाचार्य का "द्वैतवाद", वल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद" और श्री कृष्णचैतन्य का "अचिन्त्य भेदाभेदवाद" पढ़ाये थे। वेदान्त दर्शन पढ़ने के लिये चैतन्य मठ में मेरा लगभग एक वर्ष का समय लग गया था। मेरे साथ तीस और ब्रह्मचारी वेदान्त पढ़ते थे। निर्मलानन्द, ब्रह्मानन्द, ज्ञानानन्द, विपुलानन्द, कृपानन्द, विश्वानन्द, विभानन्द, प्रेमानन्द और अभेदानन्द—ये सब हम सबके गुरु थे। ये लोग हम सब ब्रह्मचारी लोगों को वेदान्त पढ़ाते थे और वेदान्त के विभिन्न विषयों पर आपस में आलोचना के लिये मौका देते थे। जीव और ब्रह्म के एकत्व विषय पर ही अधिक आलोचना होती थी।

गौरी देवी (काशी की रहने वाली एक साधुमाता) द्वारिका से वापस जाती हुई चैतन्य मठ में आयी थीं। तीन रोज वहाँ रहते हुए उन्होंने वेदान्त पर आलोचना सुनी थी। उन्होंने जाने के रोज हम सब ब्रह्मचारियों से कहा था कि यहाँ वेदान्त पर आलोचना नाममात्र ही होती है। काशी

में वेदान्त के दिग्गज पंडित लोग हर महीने वेदान्त पर आलोचना करते हैं। आगामी वार्षिक सभा में भारत के विभिन्न प्रान्तों से पंडित लोग और विभिन्न मठों से साधु-सन्यासी लोग आयेंगे। वहाँ जाना चाहिए। हम चारों ब्रह्मचारी—उत्तर मठ के विभवानन्द, पूर्व मठ के कृपाप्रकाश, पश्चिम मठ के भक्ति स्वरूप और दक्षिण मठ का मैं शुद्ध चैतन्य वाराणसी* की ओर रवाना हो गये और यथासमय वहाँ पहुँच गए थे। चैतन्य मठ में केवल वेदान्त पर ही मेरा एक वर्ष का समय बीत गया था। किन्तु किसी योगसिद्ध साधु पुरुष का सन्धान नहीं मिला था। वाराणसी में इनका सन्धान अवश्य मिल जायेगा, इस आशा पर ही मैं बनारस पहुँच गया था।

(२)

वाराणसी में—वाराणसी में आकर हम लोग दशाश्वमेध घाट के निकट साधु-आवास में ठहरे थे। भोजन का प्रबन्ध जयपुराधीश के राज-गृह में था। वेदान्त विषय पर आलोचना भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। उन सब आलोचनाओं से मैंने समझ लिया था कि दूसरे-दूसरे दर्शन शास्त्रों में भी अधिकार रखना चाहिये और व्याकरण शास्त्र को और अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। और यह भी देख लिया कि वाराणसी में तीर्थ-यात्रियों का भी अन्त नहीं है, पंडितों का अन्त नहीं है और साधु-सन्यासियों का भी अन्त नहीं है, मैं और तीनों ब्रह्मचारी यहाँ रहकर उपनिषद्, दर्शन और व्याकरण पढ़ने लगे। पं० रामनिरंजन शास्त्री से वैशेषिक और न्याय, पं० विश्वम्भर तर्करत्न से सांख्य और योग, पं० हर प्रसाद विद्यारत्न से पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा और पं० रासमोहन सिद्धान्त-वागीश से भी व्याकरण पढ़ने लगे।

---

* इस समय बड़ौदा में एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह संवादपाया कि वहाँ पण्डितों की एक महासभा होगी। इस संवाद के पाते ही मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ कर दी, और वहाँ पहुँच कर सच्चिदानन्द परमहंस से मनस्तत्त्व के विषय में बातचीत करने लगा।

—(आत्मकथा गोविन्द राम हासानन्द दिल्ली से प्रकाशित-पृ०२६)

बड़ौदा में एक स्त्री ने उन को पहचान लिया अतः वहाँ से विद्वानों के बनारस सम्मेलन में चला गया। (बंगला—देखो पोषण-प्रमाण में') देवेन्द्र बाबू का जीवन-चरित्र।

—पहचाने जाने पर बड़ौदे के आस-पास रहना नहीं हो सकता अतः स्वामी जी बनारस पहुँचे।—सं०

मेरे तीनों साथी मुझ को छोड़कर प्रयाग चले गये। मैं अकेला ही काशी में रह कर पंडितों से भिन्न-भिन्न व्याकरण के पाठ पढ़ने लगा। पं० श्री निखिलेश शास्त्री से मैंने कात्यायन का वार्तिक, पं० श्री रुद्रदेव विद्यालंकार से वाक्यपदीय, पं० श्री सोमदेव तर्करत्न से वामन और जयादित्य की काशिका, पं० श्री महादेव शास्त्री से जितेन्द्र बन्धु का न्यास, पं० श्री विमलेन्दु काव्यनिधि से हरदत्त की पदमंजरी, पं० श्रीशशिकान्त भट्ट से रामचन्द्र की प्रक्रिया कौमुदी, पं० श्री अखिलानन्द भट्टाचार्य से भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी और पं० श्री महावीर शर्मा से बोपदेव का मुग्धबोध पढ़ा था।

व्याकरण दो या तीन वार भिन्न-भिन्न पंडितों से पढ़ लिया था। मैं ब्रह्मचारी के वेश में ही रहता था। गृहस्थ पण्डित लोग मुझ को स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। पं० श्री विमलेन्दु काव्यनिधि और पं० श्री रामनिरंजन शास्त्री मुझको दर्शन शास्त्र पढ़ाने के लिये बड़े ही उत्सुक थे। मैंने उन दोनों से न्याय और वैशेषिक दो वार तथा सांख्य और योग तीसरी वार भी पढ़ा था। काशी के बहुत पण्डित हमसे शंका-समाधान के लिये भी आते थे। मैं पं० श्री हरदेव शास्त्री से मनस्तत्त्व के बारे में भी पाठ पढ़ा करता था।

मेरा मन इन सब विद्याओं को पढ़ने में रहा करता था और रात्रि को शय्या ग्रहण करने के समय योगियों के संधान करने के लिये मेरे मन के अन्दर दूसरे भाव जागृत हो जाते थे। कभी-कभी ख्याल आता था कि पंडितों का भार वहन करने से लाभ नहीं है। यदि मृत्यु को जय करने का कार्य ही बाकी पड़ा रहा तो देश-भ्रमण और विद्या-संग्रह मेरे लिये सब व्यर्थ है। जो घरबार माता-पिता को छोड़कर चला यह सब किस कार्य में आया? यह चिन्ता मुझे दिनरात सताने लगी।

इस दुश्चिन्ता के कारण मेरा चित्त चंचल और अशान्त हो गया था, काशी छोड़कर अन्यत्र जाऊँगा—इस विचार को मैंने पक्का कर लिया था। काशी के सब ही पण्डितों से मैं विदाई और आशीष माँगने लगा। सुनकर सब ही ने दुःख प्रकट किया था। मैं गुरुओं का प्रिय शिष्य था। परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ही मेरे काशी रहने के एकमात्र आश्रय थे और द्वार बंगाधीश ही मेरे आर्थिक सहायक थे। इन दोनों की कृपा से ही मैंने काशी में रहकर ज्ञानोपार्जन का सुयोग पाया था। मेरे अन्यत्र जाने के विचार से इन दोनों ने भी दुःख प्रकट किया था। इन

लोगों ने चाहा था कि मैं और कुछ समय काशी में रहूँ और शेष शास्त्रों का अध्ययन करूँ। इन्होंने काशी में रहकर योगसिद्ध साधक को ढूँढ़ने के लिये और प्रेरणा दी थी। मैंने कुछ दिन के लिये काशी छोड़ने का विचार छोड़ दिया और दूसरे-दूसरे शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

उपनिषद् पाठ—पं० श्री अच्युतानन्द शास्त्री ने मुझे ११ प्राचीन उपनिषद् और पं० श्री बलदेव शिरोमणि ने उपनिषदों के नवीन १०१ ग्रन्थों का पाठ पढ़ाया था।

स्मृतियों का पाठ—पं० श्री रत्नाकर शिरोमणि से मैंने प्राचीन स्मृति और पं० श्री महेशचन्द्र स्मृतिरत्न से नवीन स्मृतियों का अध्ययन किया था।

बौद्ध दर्शनों का पाठ—भिक्षु तथागत धर्मपाल से मैंने महायानी बौद्ध सम्प्रदाय के माध्यमिक और योगवाद सिद्धान्त तथा साधु राहुल मणिभद्र से हीनयानी बौद्ध सम्प्रदाय के वैभाषिक और सौतान्त्रिक के सिद्धान्त पढ़े थे।

जैन दर्शनों का पाठ—श्री साधु युगल किशोर पारेख से मैंने दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के उमास्वामिकृत "तत्त्वार्थाधिगम" सूत्र और श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के हरिभद्र कृत "लोकतत्त्व निर्णय" आदि ग्रन्थों का विस्तृत पाठ पढ़ा था।

तन्त्र शास्त्रों का पाठ—तान्त्रिक साधु बेताल भैरव बाबाजी ने मुझे तन्त्र शास्त्रों के योग, क्रिया और चर्या को, शैवों के आगम को, शाक्तों के शक्ति तन्त्र को, वैष्णवों के विष्णु तन्त्र को और बौद्ध-जैनियों के अवैदिक तन्त्र को पढ़ाया।

चार्वाक और बार्हस्पत्य दर्शनों के पाठ—पं० श्री विभूति भूषण तर्क-वागीश से "सर्वदर्शन संग्रह" को और श्री पं० क्षेमकरण दर्शन शास्त्री से मैंने बृहस्पति और चार्वाक के नास्तिकवाद, संजय के संशयवाद, केश कम्बली के जड़वाद, कश्यप के औदासीन्यवाद, गोपाल के अदृष्टवाद और काकुद-कात्यायन के पंच भौतिकवाद के पाठ पढ़े।

मनस्तत्त्वों का पाठ—और अन्त में परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी ने मुझे मनस्तत्त्व विषयपर कपिल के सांख्य-प्रवचन सूत्र के, ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका और पतञ्जलि के योगसूत्रों के साधनपाद सूत्रों के व्यावहारिक पाठ पढ़ाये थे।

इन सब शास्त्रों के अध्ययन से मेरे अन्दर विभिन्न शास्त्रपाठ की

प्रबल इच्छा और तुलना-आलोचना की रुचि पैदा हो गई थी। मेरा चित्त पहले से बहुत शान्त हो गया था। काशी के बड़े-बड़े विद्वान् साधु-साधक तपस्वियों के सत्संग से और विभिन्न शास्त्रों की विचार-धाराओं से परिचय प्राप्त होने से अपने जीवन को मैं बहुत ही धन्य और कृतार्थ समझने लगा। हृदय में सिंह सदृश बल आ गया और ज्ञानालोक से चित्त उद्भासित हो गया। अब मैं काशी के विभिन्न मठ-मन्दिर, आश्रम-तपोवनों में योग-सिद्ध पुरुषों का सन्धान करने लगा। तीर्थयात्रियों की भीड़भाड़ में और विभिन्न साम्प्रदायिक कोलाहलों में योग-सिद्ध पुरुषों को ढूँढ़ निकालना मेरे लिये कठिन था। इस स्थिति में परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी*ने योगियों के सन्धान के लिये नर्मदा नदी के तटवर्ती तीर्थस्थानों में जाने के लिये मुझे प्रेरणा दी थी और यह भी बोल दिया था कि चाणोद, कर्नाली और व्यासाश्रमादि स्थानों में अवश्य ही जाना चाहिये। तदनुसार काशी से प्रस्थान करने की तिथि निश्चित की गई।

गुरुजनों का आशीर्वाद—परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी के प्रबन्धानुसार प्रस्थान से पहले दिन मेरे सब ही ज्ञानदाता गुरु लोग मुझे आशीर्वाद देने के लिए दशाश्वमेध घाट पर इकट्ठे हो गये थे। गुरुओं को दक्षिणा देने के लिये द्वार-बंगाधीश (दरभंगा) ने मेरे हाथों में ५००) रुपये भेज दिये थे। सब गुरुओं ने मेरे ललाट में चन्दन का टीका लगा के और शिर पर हाथ रख के मन्त्रोच्चारण के साथ आशीर्वाद दिया था। मैंने सबके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम किया। उनमें बौद्ध, जैन और नास्तिक गुरु लोग भी थे। मैंने ५००) रु० (पाँच सौ रुपये) गुरुओं को दक्षिणा के रूप में समर्पण कर दिये। परमहंस सच्चिदानन्द सरस्वती★ ने सब गुरुओं की ओर से मुझे आशीर्वाद दिया था—'ब्रह्मचारिन्! सौम्य शुद्ध-चैतन्य! पवित्र

---

* नर्मदा के उत्पत्ति स्थान [अमर कण्टक] के दर्शन करने के बाद दयानन्द तीन वर्ष तक नर्मदा के तट पर भ्रमण करते रहे थे और अनेक साधु-महात्माओं के साथ मिले थे—"पं० लेखराम"

—देवेन्द्र बाबू के समान पण्डित लेखराम भी सत्यान्वेषी थे। वह कोई स्वकपोल-कल्पित बात नहीं लिख सकते थे। उन्हें ऐसी सूचना किसी न किसी से मिली होगी—"पं० घासीराम टिप्पणी पृ०५३, म द च. भाग १ ॥

★ हस्तलेख में 'स्वरूप'

काशीधाम से सौभाग्य के कारण तुम बहुत ही मूल्यवान् ज्ञान-सम्पद् को प्राप्त हुए हो। लेकिन तुम्हारे अन्दर योग विद्या सीखने की प्रबल इच्छा उद्दीप्त हो रही है। हम लोग उस आग को बुझाना नहीं चाहते हैं। हम तुम्हें नहीं छोड़ रहे हैं। तुम ही हम सबको छोड़कर जा रहे हो। हम लोग तुम्हारा आध्यात्मिक उत्कर्ष भी चाहते हैं। तुम यहाँ से नर्मदा (रेवा) नदी के किनारे जाने के लिये प्रस्थान करो। वहाँ नदी के दोनों तटों पर आश्रम बनवा के बहुत से योगी पुरुष रहा करते हैं। नर्मदा नदी के स्थान-स्थान में दूसरी बहुत-सी नदियों के संगम स्थल मिलेंगे। भिन्न-भिन्न साधन क्षेत्र और तीर्थ स्थल मिलेंगे। किन्तु हिंस्र पशु जंगलों में विचरण करते हैं। वृक्षों में फल मिलेंगे, सरोवर में जल मिलेगा। वृक्षों के नीचे और ऊपर सोने के स्थान मिलेंगे, वनचर मनुष्य तुम को आश्रय देंगे। जैसे वहाँ तपोवन और आश्रम हैं, ऐसे ही वहाँ चोर और डाकुओं के भी आश्रयस्थल हैं। अपने साथ में डण्डा रखो और थैली रखो और दिल में ईश्वरभक्ति रखो, विपद् आयेगा लेकिन तुम पार हो जाओगे।" गुरुओं का आदेश और आशीर्वाद मैंने शिरोधार्य किया। सब ही गुरुओं के चरण छूकर प्रणाम करके मैं प्रस्थान की तैयारी में लग गया। मैं अपने परम हितैषी द्वारबंगाधिपति से विदाई लेने को गया। वे मेरे प्रति स्नेह और श्रद्धा दोनों ही भाव रखते थे। मेरे प्रस्थान के कारण वे भी सन्तप्त थे। उन्होंने कहा —"तुम अपने प्रयोजन के अनुसार रुपये-पैसे और सामग्री जो-जो और जितनी चाहो ले जाओ।" मैंने कहा—"आप ही की कृपा से काशी से अमूल्य ज्ञान-सम्पद् मुझको मिला है। मेरे लिये वह बहुत है। लेकिन वे माने नहीं। मैंने विवश होकर एक लोटा, एक कम्बल, एक अंगोछा और एक डण्डा लेकर काशी से नर्मदा नदी की ओर प्रस्थान किया।

नर्मदा तीर्थ भ्रमण

(१)

नर्मदा के तटों में:—मैं काशी से रवाना होकर पैदल विन्ध्याचल की तरफ अग्रसर होने लगा।* और बिलासपुर होता हुआ अमर

* वहाँ [काशी मे] पहुँच कर सच्चिदानन्द परमहंस से मैंने सुना कि नर्मदा के तीर पर चाणोद, कल्याणी (कण्णाली) नाम के स्थान में बहुत से उन्नतचरित्र संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। इसके अनुसार मैंने वहाँ जाकर बहुत से योगदीक्षित साधुओं को देखा, इत्यादि।

(—आत्मकथा थ्योसोफिस्ट पृ० २६)

कण्टक पहुँच गया था। विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों के बीच में महाकाल नाम का पर्वत है। उसके अमरकंटक नामक शृंग के विराट कुण्ड से नर्मदा निकली है। मध्यप्रदेश और गुजरात होती हुई नर्मदा अरब-सागर की खाड़ी काम्बे में मिल गयी है। नर्मदा करीब एक सौ योजन लम्बी है। मैं धीरे-धीरे नर्मदा नदी के उत्पत्ति-स्थल की तरफ अग्रसर होने लगा। दोनों तटों में दूसरी दूसरी बहुत-सी उपनदियाँ आकर मिली हैं। नदियों के संगम स्थलों में बहुत से तीर्थ हैं। प्राचीन काल से ऋषि-मुनियों के नामपर बहुत से आश्रम बन गये हैं। साधु-तपस्वी लोगों के साधना करने के लिये और साधना-शिक्षा देने के लिये वहाँ साधन-क्षेत्र भी बन गये हैं। परमहंस सच्चिदानन्द स्वामी से यहाँ के चाणोद, कर्णाली, व्यासाश्रम और आबू-पर्वतादि साधन-क्षेत्रों के विषय में बहुत-कुछ सुना करता था, आबू अर्बली पर्वत का शृंग-विशेष है। उन सब स्थानों के प्रति मेरा विशेष आकर्षण था। घने जंगलों के अन्दर मैं कम-चौड़े छोटे-छोटे रास्तों से जाने लगा। कभी-कभी तो रास्ता समाप्त हो जाता था। वहाँ के स्थानीय आदमी मिल जाते तो वे बता देते थे कि इस रास्ते से किस तरफ जाने से, कौन-सा तीर्थ या आश्रम मिल जाता है। दोपहर के समय भी घने जंगलों में अंधेरा बना रहता था। भूख-प्यास लगने से या शाम हो जाने से अधिक कठिनता होती थी। बीच-बीच में चोर-डाकुओं का अड्डा भी मिल जाता था। जाते-जाते बड़े-बड़े सांप, हाथी, शेर, रीछ, वराह, जोंक, जहरीले कीट पतंगों के झुंड और बड़े-बड़े मांस-भुक् पक्षी मिलते थे। लेकिन उनमें से किसी ने भी मुझे हानि नहीं पहुँचायी और मैंने किसी को हानि पहुँचाने के लिये सोचा भी नहीं। इस रूप से मैं नर्मदा नदी के इस पार से उस पार आया-जाया करता था। कहीं-कहीं घाट-उतराई के लिये नाव का भी प्रबन्ध नहीं था। एक लकड़ी के टुकड़े के सहारे पर ही नदी पार होना पड़ा। जहाँ कुछ प्रबन्ध नहीं था वहाँ मैं तैर के ही नदी के उस पार चला जाता था, इस रूप से मेरा लोटा, कम्बल, थैली और डंडा बहुत पहले ही खो गये थे। मैं इस रूप से द्वार-बंगाधीश की दी गयी स्नेह, श्रद्धा, प्रेम-प्रीति की निशानी से भी मुक्त हो गया था।

नर-बलि—एक दिन की घटना को मैं आज तक भी भूल नहीं सका। शाम होने वाली है। सामने नदी है। अमावस्या की अंधेरी रात आने वाली है। आज मैं किस रूप से रात्रि बिताऊँगा—यही सोच रहा था। देखते-देखते और सोचते-सोचते अन्धेरा आ ही गया। दूर से आवाज

आने लगी हर्षध्वनि की । धीरे-धीरे भीड़ नदी के किनारे पहुँच गयी। मैंने दूर से देख लिया कि एक दस वर्ष के बालक को लोग नहला रहे हैं। सब पुरुष हर्ष के कारण नाच रहे हैं और स्त्रियाँ गाना गा रही हैं। एक माता बार-बार उस लड़के को पकड़ने के लिये जा रही थी और लोग माता को धकेल देते थे। यह क्या बात है इसे जानने के लिये मैं वहाँ पहुँचा। मैंने सुना कि 'आज अति पुण्य तिथि मणि-अमावस्या है। काल भैरव की गुफा में आज मध्य रात्रि को काल भैरव की सेवा में इस निष्पाप, निर्दोष और शुभ लक्षणयुक्त ब्राह्मण-बालक को बलिवेदी पर चढ़ाया जायेगा। उसके माता-पिता और वंश धन्य हो जायेंगे। ऐसा सौभाग्य सब के लिये नहीं होता है। इस एकमात्र पुत्र-बालक के पिता को पुजारियों की तरफ से ५०) रु० (पचास रुपये) प्राप्त हुए हैं, पिता काल भैरव की कृपा को अनुभव करके धीर स्थिर शान्त रहा। लेकिन मूर्ख और अभागिनी माता ने काल-भैरव की इतनी बड़ी कृपा को नहीं समझा। हर वर्ष केवल एक बार इस मणि-अमावस्या की पुण्य तिथि में काल भैरव को इस रूप से एक-एक सुलक्षणयुक्त ब्राह्मण बालक भेंट के रूप में दिया जाता है, इसमें रोने की क्या बात है? आज मध्यरात्रि को ही यह बालक बलिदान के साथ-साथ मनुष्य-देह को छोड़ कर गन्धर्व लोक को चला जायगा।"

इस बात को सुनते ही मेरे मन में तीन चिन्तायें उत्पन्न हुईं।

पहली—"मेरी माता ने मुझ पुत्र को केवल खोकर ही देहत्याग किया था। अपने पुत्र का बलिदान देख यह माता जीवन कैसे रखेगी?"

दूसरी—"इस सामाजिक महापाप के दण्ड भोग के लिए ही हमारी पुण्य-मातृ-भूमि धीरे-धीरे विदेशी वणिकों के कवल में जारही है।"

तीसरी—'धर्म के नाम पर ऐसे-ऐसे महापाप ऋषि-मुनियों के देश में कैसे चालू हो गये?"

मुझसे यह करुण और भयंकर दृश्य सहा नहीं गया। यह काल-भैरव का स्थान धर्मपुरी से लगभग दो योजन की दूरी पर जंगल के अन्दर रास्ते के पास बारंगा नाले के साथ-साथ है। धर्मपुरी* पुनघाट के सम्मुख नर्मदा के उत्तर तट पर है। फतेहगढ़ से कोई एक योजन दूरी पर ही यह स्थान है।

* ह० ले० में बंगला में—"पुनेर पुनेर"

बलिदान की शोभा-यात्रा के अन्दर जाकर रक्त चन्दन से अनुलिप्त रुद्राक्षमाला-परिहित प्रधान पुरोहित से मैंने कहा—"कृपया आप इस बालक को छोड़ दीजिये। इसके बदले मुझ को ले जाइये। मैं भी ब्राह्मण का बालक हूं।" पुरोहित ने कहा—"यह सौभाग्य सबको नहीं मिलता। इस बालक को नहीं छोड़ सकता हूं, क्योंकि यह काल-भैरव को पहले ही उत्सर्ग किया गया है। तुम भी जा सकते हो, वहाँ पुरोहित-राज कापालिक की आज्ञा हो तो बालक को छोड़ दूँगा और तुमको ही बलि पर चढ़ा दूँगा।" मैं सहर्ष राजी होकर शोभायात्रा में शामिल होकर चला। लड़के की माता के कंठ की आवाज रोने के कारण बन्द हो गयी थी। केवल पगली की तरह शोभा यात्रा में शामिल होकर आ रही थी। शोभा यात्रा कालभैरव की गुफाके सम्मुख पहुँच गयी, भीड़भाड़ वहाँ भयंकर थी सात कपड़े की पट्टियाँ सिर पर बाँध कर करीब पचास आदमी कटारी हाथों में लेकर नाच रहे थे। करीब सौ स्त्री-पुरुष शराब पी-पीकर वहाँ गाना गा रहे थे। मेरे बारे में पुरोहित और कापालिक के अन्दर बातचीत हो गयी। उन्होंने मुझको सुझाव दिया-"अगर तुम राजी हो तो काल भैरव की सेवा में तुम को ही बलिदान दिया जायेगा।" मैं राजी हो गया। पुत्र-शोकातुरा जननी को पुत्र वापस दिया गया। पुत्र को पाकर गले से आलिंगन कर के माता बेहोश होकर गिर पड़ी।

मुझको पुरोहितों ने स्नान करवाया, रक्त चन्दन बदन में लगवाया, फूलों की माला पहना पुरोहित मेरे सिर पर हाथ रख कर मन्त्र-पाठ करने लगा। कपाल में कुमकुम लगवाया गया। खड्ग की पूजा हुई। कालभैरव की गुफा के सम्मुख काठ की वेदी में मेरे सिर को रखवा कर पुरोहित लोग मिलकर मन्त्रपाठ करने लगे। चारों तरफ से "कालभैरव बाबा की जय" का उद्घोष होने लगा। मैंने जनता को एक बार देख कर आँखें बन्द कर लीं और मरने के लिये तैयार हो गया। पुरोहित ने कानों में मुख लगा के मन्त्र पढ़ दिया—"ओम् नर त्वं बलि-रूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततस्त्वां वै गच्छ त्वं गन्धर्व-सदनम्।"—'यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम्॥

यज्ञे च मरणे त्वं हि ध्रुवं गन्ता त्रिविष्टपम्!"

इस मन्त्र को पढ़कर पुरोहित ने खड्ग को घातक के हाथों में दे दिया और मेरी आँखों को कपड़े की पट्टी से अच्छी तरह कसके बाँध दिया। अब बलिदान बाकी है, लेकिन साथ-साथ अचानक बन्दूकों से गोलियाँ छोड़ने की तीन अति भयंकर आवाजें आ गयीं। साथ के आदमी लोग

वारङ्गा नाला पर काल भैरव को नर-बलि

नर-बलि के लिये उपहृत ब्राह्मण बालक, व ब्राह्मणी के परित्राणार्थ आत्म-बलिदान के लिये

आत्म-बलि के लिये तत्पर देवदूत दयालु दयानन्द योग-यात्री (पृष्ठ ४०)

चिल्लाने लगे—'भागो! भागो! भाग जाओ! मरहठी फौज आ गई!" सब कोई जंगल के अन्दर भाग गये। मैं अकेला बलिदान के लक्कड़ में बँधा हुआ पड़ा रहा। तुरन्त वहाँ चार बंदूकधारी सिपाही पहुँच गये और उन्होंने मुझ को मुक्त कर दिया। मैंने सुना कि वे लोग अमावस्या की रात्रियों में नरबलि बंद कराने के लिये घूमा करते हैं। ये लोग मरहठी फौज के सिपाही हैं। वह माता डर के मारे लड़के को साथ लेकर जंगल के अन्दर छिपी हुई थी। मैंने वहाँ जाकर माता को आशा बंधाई कि अब इन फौजी सिपाहियों से डरने का कोई कारण नहीं है। हमने इन सिपाहियों से सब बातें आनुपूर्व कह दी थीं। माता से, लड़के से और मुझसे इन्होंने सब कुछ सुन लिया। वे लोग वहाँ ही रहे। सवेरे दो सिपाही माता को और लड़के को साथ लेकर उनके घर पहुँचाने के लिये रवाना हो गये। दो सिपाहियों ने निरापदता के लिये साथलेकर मुझको धर्मपुरी छोड़ दिया। मैं धर्मपुरी से थोड़ी दूरी पर मानधारा में आया। वहाँ नर्मदा नदी का प्रपात है। वहाँ स्नान करके प्रभु के चिन्तन में बैठ गया।

प्रभु को मैंने स्मरण किया—हे प्रभो! हमसे कौन सा कार्य होगा जिसके लिये तुमने हमको बलिवेदी से भी बचा लिया? देश समाज और धर्म की अवस्था पर मैं सोचने लगा। मैंने समझ लिया था कि देश सेवा, समाज सेवा, जाति सेवा या धर्म सेवा के लिये योग्यता की आवश्यकता है याद आ गयी थी कि मैं इसीलिये नर्मदा के किनारे आया हूं। योगसिद्ध साधकों के सन्धान में मैं दोनों किनारों पर प्रत्येक आश्रम में जाऊँगा। नदी-संगम पर आश्रम में योगी लोग रहते हैं। ये ही इनके साधना के लिये सर्वोत्तम स्थान समझे जाते हैं। प्रभु ने मेरी परीक्षा की है, और भी परीक्षाएँ सामने हैं।

मैं दृढ़चित्त होकर नर्मदा के प्रवाह के अनुसार पूर्व दिशा की ओर जाने लगा। रास्ते में बहुत साधुओं का संग मिला। उन के अनुभवों को सुन कर पारमार्थिक जगत् के लिये लाभ भी उठाया। प्राकृतिक दृश्यों से मन-बुद्धि-चित्त निर्मल होने लगे। हिंस्र पशु भी साधुओं को पहचानते हैं। ये लोग साधुओं को किसी तरह से हानि नहीं पहुँचाते हैं। शिकारी लोगों को देखने से ही ये लोग बिगड़ जाते हैं। बन्दूक या बारूद के गन्ध को पाकर ही ये लोग शिकारियों को मारने के लिये संघबद्ध हो जाते हैं। जंगल के निवासी भी बहुत ही सरल, अतिथि-सेवा-परायण और कृतज्ञ होते हैं। इस भरोसे पर मैं नर्मदा नदी के आदि से अन्त तक योगियों के सन्धान के लिये तत्पर हुआ।

व्याध, हिंस्र पशु और पक्षियों की करुणा—नर्मदा के तटों पर योगियों के सन्धान में घूमते हुए मुझे व्याध, हिंस्र पशु और पक्षियों की करुणा भी प्राप्त हुई थी। दो-तीन घटनाएँ मुझे आज तक भी याद आती हैं। इन घटनाओं के संक्षिप्त विवरण के बाद नर्मदा-भ्रमण के पूरे विवरण प्रस्तुत करूँगा।

गहरे वन के अन्दर जाते हुए एक दिन मार्ग दिखाई नहीं दिया, सायंकाल हो गया। निश्चेष्ट होकर धीरे-धीरे जाने लगा। अन्धेरे में गड्ढे में गिर गया। दाहिनी टांग भंग हो गई। गड्ढे में ही पड़ा रहा। मेरी कातर आवाज सुनकर वन के रहने वाले व्याध लोगों ने आकर मुझे ऊपर उठाया, तीन रोज उन्हीं के घर पर ही रहा। उन लोगों ने टाँग पर नानाविध औषध जड़ी-बूटी लगाई, भोजन के लिए फलों का प्रबन्ध किया। यथा-शक्ति मेरी सेवा की, आरोग्य होने के बाद मुझे ठीक रास्ते तक पहुँचा दिया।

एक दिन क्षुधार्त्त होकर जंगल के अन्दर पेड़ के नीचे बैठा रहा। दो रोज भोजन नहीं मिला। फलवाले वृक्ष भी नजर नहीं आये। किसी आदमी को भी नहीं देखा। तीसरे रोज भूख के कारण अशक्त होकर पेड़ के नीचे लेट रहा, क्षुधा-पिपासा के कारण प्राण जाने वाले हो गये। धीरे-धीरे दो भालू मेरे पास पहुँच गये। मैंने जीवन की आशा छोड़ दी। दोनों भालू मेरे शरीर को सूँघने लगे और चले गये। कुछ देर बाद एक भालू मुँह में मधु मक्खियों का छत्ता लेकर मेरे पास छोड़कर चला गया। छत्ता मधु से पूर्ण था। मधु को मैंने भरपेट चाट लिया। शरीर में शक्ति आई और धीरे-धीरे मैं वहाँ से आगे चलने लगा।

एक दिन जंगल के रास्ते में चलता हुआ परिश्रान्त होकर किसी पेड़ के नीचे लेट गया और सो गया। किसी आवाज के कारण नींद टूट गयी। देखा एक साँप मेरे सिर के पास फन उठाये फुफकार कर रहा था, मैं क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आया। तुरन्त एक पक्षी (बाज) झपट करके आगया और साँप को उठाकर ले गया। इन तीनों घटनाओं से मुझे मालूम हुआ कि भगवान् की करुणा सब ही जीवों के अन्दर विद्यमान है, किन्तु उसकी करुणा चिन्ता से अतीत है।

(२)

नर्मदा का तीर्थ भ्रमण

वाराणसी से अमर कंटक—मैं वाराणसी से पैदल रवाना होकर बिलासपुर होता हुआ अमरकंटक पहुँच गया था। रास्ते में गृहस्थों के

घरों से आसानी से भोजन मिल जाता था। साधु-संग और ईश्वर-चिन्तन में समय व्यतीत हो जाता था।

अमरकंटक में एक बड़ा कुण्ड है जिससे नर्मदा निकली है। उस कुण्ड का नाम कोटि-तीर्थ है। अमरकंटक में प्राचीन और नवीन मन्दिरों की संख्या बहुत है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषि, भृगु ऋषि और कपिल ऋषि के आश्रम प्रसिद्ध हैं। कबीरदास जी का सामयिक विश्राम-स्थान कबीर चौतरा है। वहाँ से कपिलधारा और दुग्धधारा नाम के दो जलप्रपात समीप ही हैं। ज्वाला नदी का उद्गम, नर्मदा का संगम और चक्रतीर्थ भी समीप हैं। थोड़ी दूर जाने से आचार्य शंकर द्वारा स्थापित ऋण-मुक्तेश्वर मन्दिर और कुकरी मठ मिलते हैं। शोणभद्र नदी का उद्गम भी यहाँ से अधिक दूर नहीं है। मैं सब ही स्थानों में योग सिद्ध साधकों के सन्धान में गया था। सब ही जगह पुजारी लोगों की ही भीड़-भाड़ देखी।

अमरकंटक से नन्दिकेश्वर अमरकंटक से मैं मंडला आ गया था। मंडला में भी पुराने मन्दिर बहुत हैं। नर्मदा के उस पार व्यासाश्रम है। वहाँ जाकर वहाँ के महन्त श्रीमान् कर्मानन्द स्वामी से मिला। उन्होंने मुझको सात रोज हठयोग के बारे में उपदेश दिया था। उनके उपदेश का सारांश यह है:—

'हठ योग के अभ्यास से योगी शीत-ऊष्म, क्षुधा-तृष्णा, निद्रा-आलस्य, जरा और वार्द्धक्य पर विजय-लाभ करते हैं; अटूट स्वास्थ्य, मानसिक बल और आत्म संयम की शक्ति प्राप्त होती है। हठ योगी का आहार स्वल्प होता है और आहार छोड़कर भी योगी महीनों रह सकते हैं, तुम हठयोग का स्वाध्याय-अभ्यास करो।"

मैंने उनका उपदेश शिरोधार्य किया और उनसे विभिन्न आसन और मुद्राओं का अभ्यास सीखा। त्राटक, नाड़ी-शुद्धि, नेति क्रिया (नासापान), वस्ति क्रिया, धौति क्रिया, प्राणायामादि का भी अभ्यास किया।

मंडला में रहते हुए मैंने हृदय नगर, मधुपुरा घाट, सीता-रपटन, लुकेश्वर और नन्दिकेश्वर-घाट में जाकर भी योगियों की खोज की थी, हृदय नगर बंजर नदी के किनारे है। यह नदी नर्मदा में मिल गयी है और दो नदियाँ सुरपन और माटेयारी बंजर नदी के साथ मिल गयी हैं। इसलिये इसका नाम त्रिवेणी है। मधुपुरा घाट का दूसरा नाम घोड़ा घाट है। यहाँ मार्कण्डेय ऋषिका आश्रम है। योगिनी गुफा नामक स्थान भी इस स्थान के पास है। यहाँ बहुत साधुओं से भेंट हुई। उनमें कोई योगी पुरुष नहीं मिला। नन्दिकेश्वर घाट से थोड़ी दूर

पर हिंगना नदी नर्मदा में मिलती है। योगियों के संधान में यहाँ के सब ही स्थानों में मैं कई बार गया था, लेकिन केवल भक्त साधु पुरुषों को ही देखा, योगी साधक एक भी नहीं मिला। मंडला से मैं देवगांव, सिंधरपुर और देवकुंड में भी गया। शृंगी ऋषि का आश्रम सिंधरपुर में था और महोगाँव में जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। देवकुंड में जलप्रपात देखा। बहुत ऊपर से यहाँ जल गिरता है। देवगांव के पास नर्मदा में बड़नेर नदी और देवकुंड के पास नर्मदा में खरमेर नदी मिलती है। इन सब स्थानों में भी योगी साधक नहीं मिले।

नन्दिकेश्वर से मुकुट क्षेत्र मंडला से मैं जबलपुर आया। इसका दूसरा नाम जाबालि पत्तन है। यहाँ जाबालि ऋषि का आश्रम था। यहाँ से मैं योगियों की खोज में तिलवारा घाट, मुकुट क्षेत्र, त्रिशूल घाट, लमेटी घाट, गोपालपुर घाट, भेड़ा घाट, जलेरी घाट और बेल पटार घाट आदि स्थानों में गया था। भेड़ाघाट के पास धुआंधार जलप्रपात है। त्रिशूलघाट में त्रिशूलतीर्थ, लमेटीघाट में नर्मदा में सरस्वती नदी का संगम, भेड़ाघाट में भृगु आश्रम और रामनगरा में मुकुट क्षेत्र को देखा। जलेरीघाट में एक साधु से पता चला कि जबलपुर के आसपास कोई योगी पुरुष नहीं है।

मुकुटक्षेत्र से ब्रह्माण्डघाट—जबलपुर से मैं ब्रह्मांडघाट आया, नर्मदा के अन्दर द्वीप है और सप्तधारा तीर्थ है। वहाँ से मैं पिठेरा-गरारु, पिपरियाघाट, हरणी-संगम, बुधघाट, ब्रह्मकुंड, सहस्रावर्त तीर्थ, सौगन्धिक तीर्थ, सप्तर्षि वन, अंडियाघाट, शांकरी गंगा-संगम, कश्यपाश्रम, शक्कर नदी संगम, जनकेश्वर-तीर्थ, धर्मशाला, दुग्धीनदी-संगम, साई खेड़ा और खांड़े नदी का संगम है। इसका नाम केउधान घाट है। इनके अन्दर लगभग सभी तीर्थों में मैंने भ्रमण किया लेकिन अनुभवी योगी पुरुष दीख नहीं पड़े।

केउधानघाट से कालभैरव गुफा—केउधानघाट से योगियों के संधान के लिये आगे बढ़ा, वहाँ से रवाना होकर मैं कालभैरवगुफा तक आया। इस कालभैरवगुफा में ही मेरे लिये बलिदान का प्रबन्ध हुआ था। केउधानघाट से होशंगाबाद आया। वहाँ बहुत मन्दिर हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर तवा नदी का संगम है। इसके आगे सूर्यकुंड है। यहाँ से आगे गौघाट में १६ योगिनियों और दो सिद्ध पुरुषों के स्थान हैं। यह तांत्रिक और वाममार्गियों का प्रधान केन्द्र है। नांदनेर में कालभैरव और महाकालेश्वर

शिव के मन्दिर हैं। सुना गया था कि यहाँ कभी-कभी नरबलि होती है। इसके आगे महर्षि भृगु का भृगु कच्छ आश्रम है। इसके आगे मारू नदी के संगम में पाँडवों की तपोभूमि है। इसका नाम पांडुदीप पड़ा। वहाँ से आगे नर्मदा के दक्षिण तट पर पलकमती नदी का संगम है। यह पुरानी यज्ञ भूमि है। आगे नारदी गंगा का संगम है। यह नारद ऋषि की तपो-भूमि थी। इससे आगे वरुणा नदी का संगम है। इससे आगे आकाशदीप तीर्थ है। इससे आगे कुब्जा नदी का और आगे अंजनी नदी का संगम है। यहाँ शाँडिल्य ऋषि का आश्रम और गौरी तीर्थ हैं। इससे आगे गोमुख-घाट है और हत्याहरण नदी का संगम है। वहाँ से आगे नर्मदा के अन्दर पहाड़ पर भीमकुंड है। इसके आगे इंदाना नदी का और गंजाल नदी का संगम है। आगे गोनी नदी के संगम में जमदग्नि ऋषि की तपोभूमि है। आगे बागदी नदी का संगम है। यह स्थान नर्मदा का नाभिस्थान बोला जाता है। यह कालभैरव की तपोभूमि है। कुछ आगे दांतोनी नदी का संगम है। इस से आगे पुनघाट में गौतम ऋषि की तपोभूमि है।

गौतम ऋषि की तपोभूमि के समीप धर्मपुरी है और मानधारा का जल-प्रपात है। इसी के आगे जंगल के अन्दर पूर्वोक्त कालभैरव गुफा है। वहाँ के योगी और सिद्ध पुरुषों की आशा मैंने छोड़ दी थी।

काल भैरव की गुफा से मंडलेश्वर—मंडलेश्वर जाने का सन्धान मुझे किसी साधु से मिल गया था। नर्मदा के अन्दर एक टापू है। महा-राज मान्धाता ने यहाँ तपस्या की थी। इसी से इस टापू का नाम मान्धाता पड़ गया था। इसके एक ओर नर्मदा से निकली हुई काबेरी बहती है। काबेरी आगे जाकर नर्मदा में ही मिल गई है। इस टापू में बहुत से मंदिर हैं। इस स्थान का नाम ओंकारेश्वर भी है। कोटि तीर्थ और चक्र तीर्थ भी समीप हैं। नौका से पार होके यहाँ आना होता है। नर्मदा पार कर के ब्रह्मपुरी और विष्णुपुरी होकर अमलेश्वर आना पड़ता है। योगियों के सन्धान में मैं इन सब स्थानों में आया-गया। लेकिन सफल नहीं हुआ। काबेरी धारा के आरम्भ में पशुपतिनाथ तीर्थ है और अन्त में काबेरी-नर्मदा के संगम में कुबेर की तपोभूमि है। वहाँ से थोड़ी दूर पर च्यवन ऋषि का आश्रम है। कुबेर की तपोभूमि से आगे सप्त-मातृका तीर्थ है। वाराही, चामुण्डा, ब्रह्माणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी और माहेश्वरी—इन सप्त मातृकाओं के पृथक्-पृथक् मन्दिर हैं। इन सब ही मन्दिरों में तांत्रिक साधुओं से वार्तालाप हुआ था। इनकी पंच-मकार की साधन-

प्रणाली बहुत ही भयावह और अश्लील मालूम पड़ी। वहाँ ६४ योगिनियों और ५२ भैरवों के विशाल मन्दिर हैं। मन्दिरों में विशाल २ मूर्तियाँ भी हैं। वहाँ से मैं, नर्मदा के सर्वश्रेष्ठ जलप्रपात के पास आ गया था। वहाँ से कोटेश्वर और नीलगढ़ तीर्थ समीप हैं। वहाँ से आगे जाते हुए मैंने नागेश्वर कुण्ड, भस्म टोला, विमलेश्वर, गोमुखघाट और गंगेश्वर तीर्थों में योगियों का सन्धान किया था। वहाँ से आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम है और नर्मदा के साथ खुलार नदी का संगम है। वहाँ से मर्दाना और पिप्पलेश्वर होता हुआ मैं मण्डलेश्वर तीर्थ में आया। मण्डलेश्वर में कई-एक योगी और वैष्णव साधकों से भेंट हुई। मण्डलेश्वर के प्रमुख योगी आनन्दी बाबा ने मुझे राजयोग सीखने के लिए परामर्श दिया था। उन्होंने मुझे धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धि के लिए अति आवश्यक सत्य आदि के सम्बन्ध में उपदेश दिया था और आगे अग्रसर होने के लिए कहा था। मैं मण्डलेश्वर में कई एक दिन रहकर माहिष्मती पुरी की ओर चल दिया।

मण्डलेश्वर से धर्मराय तीर्थ – माहिष्मतीपुरी का आधुनिक नाम महेश्वर है। महेश्वर नगर से थोड़ी दूर माहेश्वरी नदी नर्मदा में मिलती है। ज्ञानवादी शंकराचार्य से कर्मवादी मण्डन मिश्र का यहाँ ही शास्त्रार्थ हुआ था। प्राचीन काल में चन्द्रवंशीय राजा महिष्मान् ने इस नगर को बसाया था। माहेश्वरीसंगम में ज्वालेश्वर शिव का मन्दिर है। इससे आगे सहस्रधारा नामक स्थान है। वहाँ मेरी मुक्तेश्वर नामक साधु बाबा से भेंट हुई थी। उन्हीं के साथ मैं बहुत दूर तक घूमता-घामता पर्वत के ऊपर मांडवगढ़ में पहुँचा। साधु मुक्तेश्वर बाबा के साथ ही पर्वत और वनों के अन्दर जाता हुआ पगारा, धर्मपुरी और खलघाट में गया। कुब्जा नदी का संगम, दधीचि आश्रम, साटक नदी का संगम, कारम और बुटी नदी के संगम, कसरोद, बोधपाडा, चिखलदा, राजघाट, कोटेश्वर, मेघनाद नाम के स्थान, गोयद नदी का संगम और धर्मराय तीर्थ तक दोनों ने भ्रमण किया था। धर्मराय तीर्थ के पास हिरनफाल तीर्थ के मार्ग की निम्न घटना याद है :—

जंगल के अन्दर दोपहर के समय पेड़ के नीचे दोनों विश्राम कर रहे थे। अचानक वन्य वराहों का विशाल झुण्ड भयंकर गर्जन के साथ हमारे चारों तरफ से पहुँच गया। मुक्तेश्वर बाबा डर के मारे चिल्लाते हुए पेड़

पर चढ़ गये और मुझको भी अपने पीछे चढ़ने के लिये कहा। शीघ्र पेड़ पर चढ़ना मुझे नहीं आता था। मैं बिलकुल निरुपाय हो गया था। जंगलों के रहने वाले लोग दूर से मेरे लिये चिल्लाने लगे। साधु बाबा पेड़ पर चढ़ गये लेकिन उनकी बहुत ही मजबूत लाठी पेड़ के नीचे दिखाई दी, मैं उस लाठी को हाथों में लिये हुए साहस के साथ बचने की आशा को छोड़कर ही लाठी खड़ी करके वराहों के सम्मुख अग्रसर हो गया। बार-बार मैं लाठी से मिट्टी पर आघात करके खड़ा रहा। वराहों का झुण्ड चुपचाप क्षण भर खड़ा रहकर विकृत और भयंकर आवाज के साथ भागकर चला गया। जंगल के रहने वाले स्त्री-पुरुष वहाँ पेड़ के नीचे जमा होने लगे। सब कोई पूछने लगे कि "आप कौन-सा मंत्र जानते हैं जिसके कारण वन के हिंस्र पशु भी डर के मारे भाग जाते हैं ?" साधु बाबा धीरे-धीरे पेड़ के ऊपर से नीचे उतर आये और सबसे कहने लगे—"यह साधु बहुत ही गुणी है।" इस बात को सुनकर जंगल के सौ-सौ स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी भविष्यत् का हाल जानने के लिये, दवाई के लिये और विभिन्न प्रार्थना-पूर्ति के लिए मेरा घिराव करते रहे। मैं अति सबेरे ही किसी तरह यहाँ से भागकर अकेला ही चलने लगा। बहुत देर बाद मैंने देखा कि मुक्तेश्वर बाबा भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ कर आ रहे हैं। हम दोनों फिर एक साथ मिलित हो गये थे।

धर्मराय तीर्थ से चाणोद—धर्मराय तीर्थ के अति समीप हिरणफाल का जंगल है। जंगल के अन्दर से नर्मदा का प्रवाह है। मैंने और मुक्तेश्वर बाबा ने जंगल के अन्दर प्रवेश किया और पैदल चलते हुए असुरों की तपोभूमि हिरणफाल में पहुँच गए। वहाँ एक और साधु तपस्वी को देखा। साधु ने हम लोगों से कुछ भी बातचीत नहीं की। वे मौनी थे। उन्होंने उस रोज रहने के लिए इशारा कर दिया। खाने के लिये फलवान् वृक्ष और रात बिताने के लिये और भगवान् के चिन्तन के लिए एकान्त वृक्ष तल दिखा दिये। हम दोनों ने रात को फल खा लिये थे। आधी रात को उस तपस्वी ने अति जोर से लगातार शब्द करना आरम्भ कर दिया। वहाँ के रहने वाले चार आदमियों ने आकर हम दोनों से कह दिया कि ये मेंढक बाबा पुकार रहे हैं, अब पानी बरसने वाला है और शेर भी पुकारने वाले हैं। आप लोग डरना नहीं। बोलकर वे लोग चले गये। थोड़ी देर के बाद प्रबल पानी बरसने लगा, चारों तरफ शेर पुकारने लगे और पानी जब तक बरसता रहा तपस्वी भी पुकारते रहे। पानी जब बन्द हो गया तपस्वी भी मौन हो गये और शेर भी चुप हो गये। दूसरे रोज सबेरे

तपस्वी को प्रणाम करके हम दोनों चल दिये थे। वहाँ से हम लोग शूलपाणि तीर्थ में आये थे। शूलपाणि से राजघाट आये। यहाँ से वन और पहाड़ों के कठिन मार्ग पकड़ के नर्मदा के किनारे-किनारे जाने लगे। नजदीक भृगुतुंग पर्वत और मार्कण्डेय गुफा है। थोड़ी दूर बाद नर्मदा के किनारे रणछोड़ जी का प्राचीन जीर्ण मन्दिर है। वहाँ से कपिल तीर्थ, मोक्षगंगा का नर्मदा से संगम, वड़गाँव, पिपरिया, मार्कण्डेय आश्रम, गरुडेश्वर, वाल्मीकि आश्रम, कनखोड़ा घाट, इतनी नदी का संगम, मोखड़ी, भोगकुल्या संगम, चक्रतीर्थ, भीमकुल्या संगम और गमोण तीर्थ आ गये थे। यहाँ से एक-एक स्थान पर दो-तीन बार भी गये थे और भिन्न-भिन्न स्थानों में आया-जाया करते थे। यहाँ से मुक्तेश्वर बाबा अलग होकर हमको छोड़कर चले गये। शूलपाणि का वन वहाँ पर समाप्त हो गया।

सब ही से मैंने चाणोद जाने के लिए रास्ता पूछा था। चाणोद, कर्णाली, सीनोर, व्यासाश्रम प्रभृति स्थानों के प्रति मेरा आकर्षण था। हमारे गुरु परमहंस सच्चिदानन्द ने काशी में मेरे विदाई-कालीन आशीर्वाद के अन्दर चाणोद, कर्णाली, सीनोर और व्यासाश्रम में योगी सिद्ध महापुरुषों के सन्धानार्थ जाने के लिए उपदेश दिया था। मैं पूछ-पाछ करके चाणोद पहुँच गया। मेरी अवस्था उस समय २३ या २४ वर्ष की थी।

(३)

सन्न्यास लेना और चाणोद से व्यासाश्रम—चाणोद एक नामी धर्म-क्षेत्र नर्मदा के किनारे है। यहाँ सप्ततीर्थ विद्यमान हैं। सप्ततीर्थ ये हैं—चण्डादित्य, चण्डिका देवी, चक्रतीर्थ, कपिलेश्वर, ऋण मुक्तेश्वर, पिंगलेश्वर और नंदाह्रद, हर एक तीर्थ में साधु योगी, साधक और संन्यासी देखे गये। हर एक पूर्णिमा और विशेष पुण्य-तिथि में हर एक तीर्थ में मेला लगता है। मैं योगी, मुक्त पुरुष और साधकों का सन्धान करने लगा था। चाणोद में एक वेदान्ती साधु श्रीमत् स्वामी परमानन्द परमहंस से वेदान्त सार, वेदान्त परिभाषा, वेदान्त चिन्तामणि पढ़ने लगा था। उन्होंने कहा ब्रह्म, जीव और जगत् के बारे में पूर्ण निश्चय का अनुभव आ जाने के बाद ही मुक्ति की पिपासा आ जायेगी। तब तक वेदान्त के वास्तव रूप की आलोचना होनी चाहिए। उनसे नव्य वेदान्त के बहुत ग्रन्थ अध्ययन किये। उस समय मुझे भिक्षान्न से या स्वयं रन्धन कर के देह-रक्षा करनी पड़ती थी। दोनों कार्यों में भी समय नष्ट हो जाता था। तब तक शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी

ही मेरा नाम था। परमहंस परमानन्द ने मेरी स्थिति को सोच समझ करके ही मुझको सन्यसाश्रम ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दी थी क्योंकि सन्यासी बनने से खाने के लिए मुझे अपने हाथ से रसोई पकानी नहीं पड़ेगी। हमने सन्यास लेने के लिए ही विचार पक्का करलिया। सन्यासाश्रम में प्रवेश करना ही उचित समझा था। सन्यास देने के लिए योग-दीक्षित सन्यासी का प्रयोजन था। किसी के मतानुसार मेरे सन्यास लेने के लिए महाराष्ट्री साधु चाहिए और किसी के मतानुसार गुजराती चाहिए। ठीक इसी समय चाणोद के समीप जंगल के अन्दर पूर्णानन्द नाम के संन्यासी और शिव चैतन्य नाम के ब्रह्मचारी शृंगेरी मठ से आते हुए द्वारिका मठ को जाने वाले थे। बहुत विचार के पश्चात स्वामीपूर्णानन्द ने मुझे सन्यासाश्रम में आनुष्ठानिक रूप से दीक्षित कर दिया। तब से मेरा नाम हो गया स्वामी दयानन्द सरस्वती। दोनों साधु अपने-अपने स्थान को चले गये थे। मैं वहाँ से व्यासाश्रम में आकर योग विद्या सीखने लगा।

—:०:—

तृतीय अध्याय

योगविद्या-शिक्षा

व्यासाश्रम में योग-शिक्षा—शुकेश्वर तीर्थ नर्मदा के दक्षिण तट पर है और उत्तर तट पर व्यास तीर्थ। यहाँ व्यास जी के नाम पर व्यासाश्रम है*। नर्मदा की एक धारा आश्रम के उत्तर की ओर भी बह रही है इसलिए यह आश्रम द्वीप में परिणत हो गया है। इसके लिए अगल-बगल चारों तरफ झंझर, ओरी, कोहिबभू, अनसूया आदि तीर्थ हैं। चाणोद से अनसूया तक नौका से आना भी सम्भव है। मैं सब ही तीर्थों में योगियों के सन्धान में घूमा था। निराश हो कर मैं व्यास तीर्थ में पहुँच गया।

वहाँ पहुँचने के साथ ही एक साधु वहाँ आकर "तुम दयानन्द सरस्वती हो" ऐसा बोलकर मुझ को व्यासाश्रम में ले गये।

मैं चकित हो गया। मैं समझ नहीं सका कि कैसे इनको नाम मालूम हो गया! उन्होंने रहने के लिये मुझे एक कुटिया दे दी और खाने के लिए आश्रम के फलवान् वृक्ष दिखा दिये। वहाँ एक अतिवृद्ध साधु को दिखाकर उन्होंने कहा—"इनकी सेवा का भार तुम्हारे ऊपर रहा। ये तुम्हें योग विद्या

---

* व्यासाश्रम में एक योगानन्द स्वामी को सुना कि वे योगाभ्यास में अच्छे हैं। उनके पास जा के योगाभ्यास की क्रिया सीखी।

(पं०भगवद् दत्त लिखित जन्मचरित्र—पृ० २४)

—"नर्मदा तीरवर्त्ती प्रदेश में गया। वहाँ योगानन्द स्वामी के साथ साक्षात् हुआ।" आत्मकथा पृ० १२ (पूना प्रवचन में)

– व्यासाश्रम को चला गया। व्यासाश्रम में योगानन्द नामक योग-विद्या विशारद साधु रहते थे। उनके पास विद्यार्थी रूप में रहा।

—थ्यासोफिस्ट से।

की शिक्षा देंगे और मैं बीच-बीच में तुम्हारी विद्या की परीक्षा लूँगा। मन को शान्त रखो।" साधु बाबा का नाम था स्वामी योगानन्द। इनके साथ रहता हुआ मैं योगविद्या सीखने लगा।

दिनचर्या—उन्होंने मेरा दिनचर्या का कार्यक्रम इस प्रकार बनवा दिया :—

रात्रि के तृतीय प्रहर में शैय्या से उठकर सूर्योदय तक धारणा और ध्यान में बैठे रहना।

सवेरे नित्यकर्म और नैमित्तिक कर्म के बाद योगशास्त्रों का स्वाध्याय करना और अल्प समय के लिए शंका-समाधान करना।

दोप्रहर में आहारादि के बाद विश्रामान्त में क्रिया योग का अभ्यास करना।

अपराह्ण को वन-भ्रमण और वृक्ष-मूल में बैठकर भगवच्चिन्तन और—

सायं को नित्य और नैमित्तिक समापनान्त में धारणा, ध्यान और क्रिया योग के अनुशीलन।

दोप्रहर का आहार भिक्षान्न से और सायं का आहार फलों के द्वारा; रुग्णावस्था में पूर्ण विश्राम ग्रहण करना।

सर्वदा वाक् संयम, सम्पूर्ण बृहस्पतिवार मौन धारण और एकान्त-वास।

किसी अशुभ इच्छा या कुचिन्ता के आने पर गुरु के पास बोल देना और हर रोज गुरु के निर्देशानुसार आसन-प्राणायाम-मुद्रादि का अभ्यास करना।

क्षुधा पर विजय लाभ—दैनन्दिन कार्यक्रम में अभ्यस्त होने के बाद गुरुजी ने मुझे क्षुधा पर विजय लाभ के लिए उपदेश दिया।

"क्षुधा मनुष्यों का परम मित्र है,लेकिन क्षुधा को संयत नहीं रखने से वह शत्रु बन जाती है। योगी या योग के शिक्षार्थी को तो इस पर विजय-लाभ करना ही चाहिए। क्षुधा एक तरह की इच्छा है इसके द्वारा शरीर के क्षय की पूर्त्यर्थ खाद्य की जरूरत समझी जाती है। इस क्षय-पूर्ति के बिना देह यातना भोगता है और शरीर से प्राण निकल जाता है। जिस वस्तु से

शरीर का पोषण असम्भव हो उस के भी ग्रहण से क्षुधा की निवृत्ति देखी जाती है। लेकिन देखा जाता है कि बहुत बीमार आदमी विना भोजन के मासाधिक काल तक रह जाते हैं। विना भोजन के बहुत से उन्मादी सुदीर्घ काल तक रह जाते हैं और बहुत शोक-ग्रस्त व्यक्तियों को क्षुधा लगती भी नहीं। खाद्यों से हम लोगों को जो प्राण वायु मिलता है और जिसके द्वारा हम लोग जीवित रहते हैं वह प्राण-वायु मिट्टी, पानी, आग, हवा और आसमान से यथेष्ट मिल सकता है। योगी प्राणायाम के यथायथ साधन से भी शरीर की क्षय-हानि को पूर्ण कर सकते हैं। जितने परिमाण के खाद्य को आदमी ग्रहण करते हैं, शक्ति के अभाव के कारण पाकस्थली उससे सम्पूर्ण प्राण-शक्ति को लिए बिना छोड़ देती है। लेकिन प्राणायाम की शक्ति-वृद्धि होने पर योगी पंच-भूतों से भी अपनी जरूरत के अनुसार प्राण-वायु लेकर जीवित रह सकते हैं।

दैनन्दिन श्रमादि के द्वारा देह के उपादानों का क्षय होता है। आहार आदि के द्वारा उसकी पूर्ति होजाती है। श्रम अल्प होने से आदमी अल्प भोजी होता है। श्रम अधिक होने से अधिक भोजी होता है। श्रमादि की स्वल्पता से शरीर का स्वल्पक्षय और स्वल्पाहार का प्रयोजन होता है। अन्तःकरण सात्विक आनन्द से, चिरतृप्ति से, मन में सन्तोष रहने से और शरीर निश्चल रहने से देह का क्षय नहीं होता है। सुदीर्घ चिन्ता के द्वारा भी क्षुधा की निवृत्ति होती है। दुश्चिन्ता से शरीर का क्षय ज्यादा होता है और प्रगाढ़ आनन्द पूर्ण चिन्ता के द्वारा शरीर की वृद्धि ही होती है। आनंद स्वरूप परमात्मा में अपने को नियमित रूप से उपासना के अन्दर निमज्जित रखने से शरीर और मन अपक्षय से बचकर सदा प्रफुल्लित कमल के रूप में रहते हैं।

(ह० ले०पृ० १०१ से ११० तक) यह उपदेश लेने के बाद मैंने अच्छे रूप से इस पर सोचा और कई एक महीनों के बाद इस को क्रियात्मक रूप से ग्रहण करने के लिये ही इच्छा की थी। गुरुजी ने मुझ को रोक दिया। तीन महीनों के बाद शीत ऋतु आने पर गुरु जी ने इसके लिए नियम बनवा दिये।

१—दिन के अन्दर प्रचुर परिमाण में जल पीने के लिए कहा गया।

२—दिन में पूर्णाहार और रात को स्वल्पाहार का नियम।

३—पीछे महीने में दो रोज उपवास रखने का नियम।
४—पीछे सप्ताह में एक रोज उपवास का नियम।
५—पीछे केवल फलाहार या दुग्ध पान का नियम।
६—पीछे क्रमानुसार सप्ताह में एक रोज,दो रोज, तीन रोज केवल जल पीकर रहना।
७—पीछे सप्ताह भर ही केवल जल पीकर और वायु सेवन कर प्रबल ध्यान और प्राणायाम के साथ आसन में बैठे रहना।
८—और अति अल्प आंगन के अन्दर भ्रमण करने के नियम बनाये गये थे!

मैं उन नियमों पर बहुत दिन प्रतिष्ठित रहा था। आज भी यह क्रिया मेरे आयत्व में ही है। धारणा, ध्यान और समाधि का इन्हीं नियमों के द्वारा मुझे अभ्यास हो गया था। क्षुधा मुझको क्लेश नहीं देती है।

दुर्घटना—बाद में व्यासाश्रम में जितने योग-शिक्षार्थी आते थे, गुरुजी उनकी शिक्षा का भार मेरे ऊपर छोड़ देते थे। एक घटना मुझे आज तक भी याद आती है।

मध्यभारत के किसी प्रसिद्ध राजा के पुत्र ने पूरे प्रबन्ध के साथ नर्मदा के किनारे सपत्नीक शिकार खेलने के लिए जंगल में प्रवेश किया। दो रोज के बाद किसी कारणवश राजपुत्र और राजवधू के अन्दर मतद्वैध्य, अभिमान और रोष पैदा हो गया था। राजा ने अपने सैन्य और भृत्यों में से बहुत थोड़े रख कर शेष सभी को राजधानी जाने के लिए आदेश दे दिया था। और थोड़े सैन्य, भृत्य और दासी वधूरानी के साथ कई दिन तक वन के अन्दर ही रहे। बीच-बीच में राजपुत्र और वधूरानी दोनों व्यासाश्रम में उपदेश लेने लगे। एक दिन दोनों ही आपस में झगड़ा करके मध्यरात्रि में मीमांसा के लिए व्यासाश्रम में पहुँच गये थे। गुरुजी ने मेरे ऊपर मीमांसा का भार छोड़ दिया था। मैंने वधूरानी के अन्दर अपराध पाया और राजपुत्र से क्षमा मांगने के लिये उनको विवश किया। इस लिये वधूरानी मेरे प्रति विद्वेष के भाव रखने लगी।

तीन-चार रोज के बाद मेरे चरित्र पर कलंक आरोपण के लिये राजवधू मध्य रात्रि को पाँच दासियों के साथ कई हजार रुपये के जेवरों से भरी हुई पेटिका लेकर मेरी कुटिया में पहुँच गयी और बहुत ही विनीत भाव से उस पेटिका के साथ करीब १७-१८ वर्ष की परम सुन्दरी दासी

को कई एक रोज आश्रम में रखने के लिए छोड़ कर तुरन्त चली गयी। दासी रोती हुई कहने लगी—वधूरानी ने किसी अपराध के कारण मुझे राजपुत्र के तम्बू से निकाल दिया है। इस पेटिका के अन्दर करीब साठ हजार रुपये का जेवर है। "आपके चरणों में इस पेटिका के साथ मैं अपने को समर्पण करती हूं। आप मुझको लेकर किसी दूसरे स्थान को चलिये। एक मुहूर्त भी देर न करें।" ऐसे बोलती हुई आँखों से आँसू बहाने लगी।

मैंने प्रभु का स्मरण किया और कहा—"प्रभो! यह मेरे लिए तुमने कौन-सी परीक्षा रख दी है? तुम ही मुझे बताओ।" मेरी आँखों से भी आँसू बहने लगे। झट गुरुजी को जोर-जोर से चिल्लाकर पुकारने लगा।

गुरुजी भी दूसरी कुटिया से चिल्लाने लगे '**मा भेतव्यं, मा भेतव्यम् एषोऽहमागत**."-डरो मत, डरो मत, मैं आरहा हूं।

गुरुजी आ गये, जेवर की पेटिका वहाँ ही पड़ी हुयी है। लेकिन दासी वहाँ नहीं है। दासी वहाँ से अचानक भाग गई। मैं गुरु जी को सब वृत्तान्त बताने लगा।

तुरन्त चार बन्दूकधारी पलटन के साथ राजपुत्र भी वहाँ पहुँच गए और बोलने लगे—हम इन महात्मा दयानन्द सन्न्यासी को वधूरानी के कलंक-चक्र से बचाने के लिए आए हैं।

मैंने कहा—"हाँ राजकुमार, दयालु प्रभु ने मुझे बचा लिया। यह है दासी की पेटिका।"

राजपुत्र ने कहा—"हाँ महाराज! यह पेटिका मेरी ही है। राजवधू के परामर्श से दासी चोरी से ले आई थी, आप इसको स्वीकार कीजिए।"

मैंने इस पेटिका को स्वीकार करके गुरुजी के चरणों में भेंट कर व्यासाश्रम के कार्य के लिए दे दिया। इस घटना के अन्दर प्रभु की अपार लीला का भी सन्दर्शन किया।

श्वास और दीर्घजीवन—गुरुजी ने अनाहार के बारे में कहा—

नाश्नन्ति बर्हुराः शीते फणिनः पवनाशनाः।
कूर्माश्चैवांगगोप्तारो, दृष्टान्ता योगिनो मताः।"

अर्थात् योगी लोग मानते हैं—"शीत काल में मेंढक खाते नहीं, सांप वायु का भक्षण करते हैं और कछुए अपने अंग को छिपा के रखते हैं।"

योगी लोग इन सब जीवों के अनुकरण से समाहित हो सकते हैं। उन्होंने आविष्कार किया था कि जिन प्राणियों की श्वास-संख्या जितनी कम है और अल्पायत (थोड़ी लम्बी) है वे प्राणी उतने ज्यादा समय तक जीवित रहते हैं, और जिन प्राणियों की श्वास संख्या जितनी ज्यादा है वे प्राणी उतने अल्प समय तक जीवित रहते हैं। ये लोग इस सिद्धान्त पर पहुँच गये थे कि (ह० ले० पृ० १११) मनुष्य यदि अपने श्वास को कम कर सके तो अपने निर्दिष्ट जीवन काल से भी अधिक काल तक जीवित रह सकते हैं।

आसन-शिक्षा*—गुरुजी ने कहा 'चित्त स्थिर करने के लिए योग के भिन्न-भिन्न अंगों की साधना-करना। शरीर को स्थिर करने में आसन का प्रयोजन है। आसन सिद्ध न होने से धारणा, ध्यान या समाधि कुछ भी सम्भव नहीं है। शरीर स्थिर होने से चित्त स्थिर होता है। चित्त से शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। चित्त में जिस भाव का उदय होता है, शरीर में वही भाव प्रकट होता है। विभिन्न आसनों की सिद्धि से चित्त के भावों का भी परिवर्तन होता है। जिन आसनों के अभ्यास से चित्त में उच्च भावों का उदय होता है वे आसन ही योग सम्बन्धी आसन हैं। योग के अनुकूल आसनों के अभ्यास से चित्त में नीच भावनायें प्रकट नहीं होतीं। अपितु शुद्ध भाव प्रकट होते हैं। शरीर की स्थिरता से चित्त की स्थिरता आती है, चित्त स्थिर होने से प्राण वायु भी स्थिर हो जाता है।

आसन दो प्रकार के हैं—

प्रथम—किसी वस्तु से निर्मित आसन, जैसे—कुशासन, मृगचर्मासन, व्याघ्र-चर्मासन, लोमासन या कार्पास-वस्त्रासन।

विना आसन के मिट्टी पर बैठ कर किसी प्रकार की साधना नहीं करनी चाहिए। मिट्टी पर सो जाने से या बैठने से पृथ्वी हमारी शक्ति को खींच लेती है। किसी वस्तु से निर्मित आसन पर बैठने से पार्थिव आकर्षण से हमको कोई हानि नहीं पहुँचती।

---

* योग दर्शन 'स्थिरसुखमासनम्' २-४३ से मिलान करो।
—जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसको आसन कहते हैं।
—अथवा जैसी रुचि हो वैसा आसन करे। (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उपासना प्रकरण)

द्वितीय—देह को किसी कौशल से विन्यस्त रखना। दैहिक आसन बहुत प्रकार के हैं। जिस आसन में अभ्यस्त होने से जिस का शरीर निश्चल और सुखकर मालूम होता है, वह आसन ही उसके लिए हितकर है। अधिकांश साधकों के लिए मुक्त-पद्मासन ही बहुत अच्छा है। जितनी कम आयु से आसन का अभ्यास होता है उतना ही अच्छा है। अधिक आयु में आसन का अभ्यास करना कठिन हो जाता है। पैर की हड्डी मोटी हो जाने से पैर को मोड़ने में कष्ट होता है।

सभी आसनों में मेरुदंड को सीधा रखना होता है। मेरुदंड के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी है। उस नाड़ी पथ से शक्ति ऊपर उठती है। मेरुदंड के निम्नतम स्थान से शक्ति ऊपर उठकर मस्तक के अन्दर सहस्रार तक पहुँच जाती है। साधकों की उन्नति के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होती है। जितनी विषयासक्ति कम हो जायगी और वैराग्य की वृद्धि होगी वह शक्ति उतनी ही ऊपर की तरफ जायगी। साधना की उन्नति इस पर ही निर्भर करती है। मेरुदंड सीधा रखने से सुषुम्ना सीधी और टेढ़ा रखने से टेढ़ी होती है। सुषुम्ना सीधी रहने से शक्ति सीधी यातायात कर सकती है। जिसकी सुषुम्ना टेढ़ी हो वह उच्च भावना या उच्च धारणा नहीं कर सकता है समाधि लाभ तो असम्भव ही है।❀

प्राणायाम शिक्षा

—गुरुजी ने उपदेश दिया—'आसन का अभ्यास होने पर शीतोष्ण, क्षुधा-तृष्णा, सुख-दुःखादि द्वन्द्व चित्त को प्रभावित और पराभूत नहीं कर सकते हैं★ आसन जय होने से प्राणायाम सम्भव होता है। प्राणायाम-शिक्षा के साथ-साथ 'नाड़ी शुद्धि' भी करनी चाहिए।

❀मिलाओ—ततो द्वन्द्वानभिघातः। २।४८

जब आसन दृढ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है। और न सर्दी गर्मी अधिक बाधा करती है। (ऋ० भा०भू०पृ०)

★ इस प्राणायाम प्रकरण का बंगला लेख मिलान के लिये नहीं आ पाया था। स० स०

प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासारन्ध्र से श्वास वायु का ग्रहण 'पूरक' है। नासारन्ध्र से उस वायु को छोड़ देने का नाम 'रेचक' है और पूरक के बाद रेचक न करके निःश्वास को बन्द रखने का नाम 'कुम्भक' है। कुम्भक दो प्रकार के होते हैं—पूरकान्तक कुम्भक और रेचकान्तक कुम्भक। **कुम्भक का दूसरा नाम गति-विच्छेद है** ❀

बाहर श्वास-प्रश्वास का गति-विच्छेद करना होता है। और अन्दर भी चित्त की गति का विच्छेद करना होता है। चित्त सर्वदा चञ्चल है। चित्त की चञ्चलता ही चित्त की गति है। श्वास-प्रश्वास स्थिर हो जाने से प्राण शक्ति का गति-विच्छेद होता है। और चित्त की चञ्चलता दूर होने से चित्त का गति-विच्छेद होता है। चित्त की स्थिरता ही चित्त का गतिविच्छेद है, इसलिये कुम्भक के समय भीतर भी चित्त को स्थिर रखना चाहिये। प्राणशक्ति ही चित्त को चञ्चल करती है इसलिए **चित्त को स्थिर करना और प्राणशक्ति को स्थिर करना एक ही बात है**। बाहर कुम्भक के द्वारा प्राणशक्ति को स्थिर करना और अन्दर चित्त को स्थिर करके प्राणशक्ति को स्थिर करना, प्राणशक्ति को दोनों ओर से स्थिर करना है, इसलिये प्रथमतः आसन का अभ्यास करके शरीर को स्थिर करना और इसके बाद ध्यान का अभ्यास करके मन को स्थिर करना।

शरीर और मन को स्थिर करने से ही कुम्भक अभ्यास ठीक होता है मन और शरीर को स्थिर न करके कुम्भक का अभ्यास करने से अनिष्ट होता है। इसलिए जो लोग अत्यन्त संसारी और विषयसेवी हैं उनका कुम्भक करना अपने को खतरे में डालना है। मन के चाञ्चल्य के साथ कभी कुम्भक नहीं करना चाहिये। जो लोग त्रिताप से प्राप्त वैराग्य के साथ और विषयासक्ति छोड़कर चित्त को स्थिर करके कुम्भक का अभ्यास करते हैं उनको बहुत ही सुफल मिलता है। प्रथम प्राणायाम-शिक्षार्थी को आसन-अभ्यास के साथ नाड़ी शुद्धि भी करनी चाहिये।

नाड़ीशुद्धि किसे कहते हैं? हमारे मेरुदण्ड के अन्दर तीन नाड़ी हैं—इडा पिंगला और सुषुम्ना। ये नाड़ी आध्यात्मिक हैं आधिभौतिक नहीं, आध्यात्मिक विषय सूक्ष्मतत्त्व है स्थूलतत्त्व नहीं है। बहिरिन्द्रिय के द्वारा स्थूलतत्त्व का ज्ञान होता है और अन्तरिन्द्रिय के द्वारा सूक्ष्मतत्त्व का ज्ञान होता है।

❀ मिलाओ—तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥२.४९॥ (ऋ० भू० २४। उपसनाप्रकरण)।

नाड़ी शुद्धि—प्राणायाम से पहले नाड़ीशुद्धि करने का विधान है आसन में नियमित रूप से बैठकर प्रथमतः दक्षिण नासारन्ध्र को बन्द करके* वाम नासारन्ध्र के द्वारा यथाशक्ति वायु को खींचना। जितना ज्यादह वायु खींचा जाये उतना ही अच्छा है। जबरदस्ती वायु खींचने से बीमारी हो सकती है। वाम नासारन्ध्र से यथाशक्ति वायु खींचने के बाद ही दक्षिण नासारन्ध्र द्वारा यथाशक्ति रेचक करना। पूरक करने के बाद ही तुरन्त रेचक करना, बीच में कुम्भक नहीं करना। रेचक समाप्त होने के साथ-साथ ही दक्षिण नासारन्ध्र के द्वारा पूरक करना और वाम नासारन्ध्र से रेचक करना। इस प्रकार हर रोज आसानी से जब तक सम्भव हो करना। पूरक और रेचक के समय वायु को धीरे-धीरे खींचना और धीरे-धीरे छोड़ना। नासारन्ध्र के सम्मुख रुई धरने से रुई न सञ्चालित हो। इस प्रकार धीरे-धीरे वायु को खींचना और छोड़ना। वायु को झट अचानक नहीं खींचना या नहीं छोड़ना। खींचने के समय और छोड़ने के समय समान ताल रखनी चाहिए। इस प्रकार की नाड़ी-शुद्धि के समय दूसरी कुछ चिन्ता नहीं लानी चाहिए। इसी क्रिया में ही मन लगाना चाहिए। श्वास-प्रश्वास में ही मन को निबद्ध रखना चाहिए।

बहुत दिन तक नाड़ी-शुद्धि का अभ्यास करने से आसन जय होता है। शरीर लघु होता है। तामसिक भाव हट जाता है, मन में आनन्द आता है। उच्च विषय के चिन्तन करने की और धारण करने की शक्ति आती है और दूसरे बहुत प्रकार के उपकार होते हैं। खास करके इससे फेफड़े में बल आने लगता है और फेफड़े प्राणायाम करने के लायक बन जाते हैं।

नाड़ी-शुद्धि करने के समय निम्न विषयों के प्रति ध्यान रखना चाहिए—

१. ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना।
२. सात्त्विक और परिमित आहार करना।
३. निर्जन घर में रहकर अभ्यास करना।
४. कसे कपड़े नहीं पहनना।
५. घर का हवादार व साफ सुथरा होना।
६. यथारीति आसन लगाके बैठना।

---

*संकल्प बल से दक्षिण नासारन्ध्र से वायु को न आने देना। मन को बायें रन्ध्र पर केन्द्रितकर टिका कर, अत्यन्त मन्दगति से वाम नथुने से यह क्रिया सिद्ध हो जाती है। स०

७. हवा को यथाशक्ति धीरे-धीरे खींचना व छोड़ना।
८. श्वास-प्रश्वास पर मन को एकाग्र करना।
९. मन में बाहर की चिन्ता को नहीं आने देना।
१०. पेट के अन्दर मल व दूषित वायु नहीं रहे।

असंयमी, अत्यन्त इन्द्रियभोगी व ब्रह्मचर्यहीन व्यक्ति नाड़ी-शुद्धि क्रिया करने से अति कठिन रोगों से आक्रान्त होंगे। कुम्भक अभ्यास से पहिले आसन स्थिर, मन स्थिर और नाड़ी शुद्धि होने से बहुत अच्छा होता है क्योंकि आसन-जय, चित्तस्थिरता और प्राणायाम के अन्दर गहरा सम्बन्ध है।

प्राणशक्ति को विश्राम देना भी प्राणायाम है। हमारे अंग-प्रत्यंगों के सदैव कर्मों में लगे रहने के कारण इनको विश्राम न देने से हमें कष्ट होता है इनको विश्राम देने से हमें सुख होता है। शरीर चंचल रहने से चित्त चंचल होता है। शरीर स्थिर होने से चित्त भी स्थिर होता है। प्राण चंचल रहने से और स्थिर रहने से चित्त भी चंचल और शान्त होता है। प्राण और शरीर के साथ चित्त का निकट सम्बन्ध है। शरीर और चित्त को स्थिर करने से प्राण स्वयं स्थिर हो जाता है। आसन और चित्त सम्यक् स्थिर हो जाने से प्राण की गति का विच्छेद अर्थात् विराम होता है। जो श्वास-प्रश्वास विरामहीन रूप से चला करता है उसके अन्दर विराम और विश्राम आ जायेगा। साधारण मनुष्य दिनरात श्वास-प्रश्वास लेकर रहते हैं लेकिन साधक दिनरात कुम्भक करके भी रहते हैं। प्राण के विराम होने से कुम्भक होता है। कुम्भक होने से चित्त स्थिर होता है और चित्त स्थिर होने से भी कुम्भक होता है। चित्त को स्थिर करने की साधना आभ्यन्तर साधना है। चित्त को स्थिर न करके जो केवल नाक टीप के [रोक के] ही कुम्भक करता है उसके हृत्पिण्ड, फेफड़े, पाकस्थली आदि यन्त्र कठिन रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं।

त्रिदेव तत्व—वात (वायु), पित्त (अग्नि) और कफ (श्लेष्मा या वरुण) ये तीन देवता शरीर के अन्दर रहते हैं। प्राणायाम से सब देवता तुष्ट होते हैं।

वायुतत्व—प्राणशक्ति को संयत करना भी प्राणायाम है। शक्ति का

नाम ही प्राण है। प्राण पाँच अंशों में विभक्त होकर शरीर को चलाता है। पञ्च प्राणों के रहने के पाँच स्थान हैं। यथा—हृदय में प्राण, गुह्यदेश में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और सारे शरीर में व्यान रहता है।

१. **प्राण का कार्य**—श्वास का ग्रहण और त्याग, हृदय-परिचालन, खाद्य वस्तुओं को पाक स्थली में प्रेरणा करना, धमनी के द्वारा सारे शरीर में रक्त संचालन, शिरा और स्नायुओं को कर्मिष्ठ रखना आदि।

२. **अपान का कार्य**—प्राणवायु के आकर्षण के साथ श्वास-प्रश्वास-क्रिया में सहायता पहुँचाना, मलमूत्रादि को अधोदेश से निःसारित करना, माताओं के देहों से सन्तान-प्रसव कराना आदि।

३. **समान का कार्य**—जठराग्नि को सक्रिय रखना, पाकस्थली से अर्धजीर्ण खाद्यों को ग्रहणी नाड़ी में ले जाना, जीर्ण खाद्यों का सार और अजीर्ण खाद्यों को पृथक्-पृथक् कर देना। प्राण और अपान वायु की समता, रक्षा करना आदि।

४. **उदान का कार्य**—शब्द करना, बातचीत करना, गाना, मन बुद्धि स्मृति शक्तियों को बढ़ाना, साधकों के मन को अतीन्द्रिय राज्य में ले जाना आदि।

५. **व्यान का कार्य**—शरीर में खून को सर्वत्र शीघ्रता से संचालन करना, शरीर में संकोचन-प्रसारण करना, मस्तिष्क में रक्त-प्रवाहित करना, देह से पसीना आदि निःसारण करना आदि।

प्राणायाम से ये पाँच प्राण और इनके साथ पाँच उपप्राण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय शरीर में सक्रिय और सतेज होते हैं। मन बुद्धि चित्त यथार्थ रूप से तत्पर हो जाते हैं। तन्द्रा, आलस्य व जड़ता का नाश हो जाता है। सदा सर्वदा शरीर नीरोग, स्वास्थ्यवान् कर्मठ और मन तेजस्विता से पूर्ण हो जाते हैं।

पित्त तत्त्व

देहस्थ शरीर-गठनकारी अग्नि ही पित्त नाम से अभिहित है। पित्त पाँच भागों में विभक्त है—पाचक पित्त, रंजक पित्त, साधक पित्त, आलोचक पित्त, भ्राजक पित्त। पित्त शरीर में रहता हुआ निम्न कार्य करता है शारीरिक शक्ति, शारीरिक ताप रक्षा, दृष्टि शक्ति विधान, क्षुधा-तृष्णा को जागृत करना, शरीर की मृदुता की रक्षा करना,